DALAI LAMA TIBETO-INDOLOGICAL SERIES-XVII

# BODHIPATHAPIṆḌĀRTH

of

rJe Tsong Kha pa

Translated and edited by

*K. Angrup Lahuli*

H
294.7
T 789 B

CENTRAL INSTITUTE OF HIGHER TIBETAN STUDIES
SARNATH, VARANASI

C.E. 1996

H
294.7
T789B

दलाई लामा भोट-भारती ग्रन्थमाला - १७

༄༅། །རྗེ་ཙོང་ཁ་པས་མཛད་པའི་
ལམ་རིམ་བསྡུས་དོན།།

आचार्य चोङ्-ख-पा विरचित

# बोधिपथक्रमपिण्डार्थ

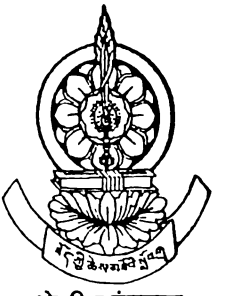

भोट विद्या संस्थानम्

अनुवादक एवं सम्पादक

**के० अंगरूप लाहुली**

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द-२५४० खीस्ताब्द-१९९६

दलाई लामा भोट-भारती ग्रन्थमाला - १७

**प्रधान सम्पादक :** भिक्षु समदोङ् रिनपोछे

**प्रथम संस्करण :** ५०० प्रतियाँ, १९९६

**मूल्य :** अजिल्द : रु0 ४५.००

© १९९६ केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी - २२१००७
प्रकाशक सम्बन्धी सभी अधिकार सुरक्षित ।

**प्रकाशक :** केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी-२२१००७

---

**मुद्रक** : शिवम् प्रिन्टर्स, मलदहिया, वाराणसी

DALAI LAMA TIBETO-INDOLOGICAL SERIES-XVII

# BODHIPATHAPIṆḌĀRTH
of
rJe Tsong Kha pa

Translated and edited by

***K. Angrup Lahuli***

CENTRAL INSTITUTE OF HIGHER TIBETAN STUDIES
SARNATH, VARANASI

B.E. 2540 C.E. 1996

DALAI LAMA TIBETO-INDOLOGICAL SERIES-XVII

Library IIAS, Shimla
H 294.7 T 789 B
00095028

**Chief Editor:** *Prof. Samdhong Rinpoche*

**First Edition:** 550 copies, 1996

**Price:** Paperback: Rs. 45.00

© Copyright by Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath, Varanasi -221007, India, 1996. All rights reserved.

**Publisher:**
Central Institute of Higher Tibetan Studies,
Sarnath, Varanasi-221007, India.

Printed at Shivam Printers, Varanasi, India.

# विषय-सूची


| | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १. | प्रकाशकीय (तिब्बती) | VII |
| २. | प्रकाशकीय (हिन्दी) | IX |
| ३. | आमुख | XI |
| ४. | ग्रन्थकार की संक्षिप्त जीवनी | XV |
| ५. | मंगलाचरण | १ |
| ६. | उपदेश की महत्ता | ४ |
| ७. | उपदेश की चार विशेषताएं | ४ |
| ८. | अनुशंसा | ६ |
| ९. | कल्याणमित्र धारण करने की विधि | ७ |
| १०. | क्षण सम्पत्ति की दुर्लभता | ८ |
| ११. | शरणगमन | ११ |
| १२. | अभ्युदय | १२ |
| १३. | नि:सरण उत्पन्न करने की आवश्यकता | १३ |
| १४. | चित्तोत्पाद | १६ |
| १५. | दान पारमिता | १७ |
| १६. | शील पारमिता | १८ |
| १७. | क्षांति पारमिता | १९ |
| १८ | वीर्य पारमिता | २१ |
| १९. | ध्यान पारमिता | २२ |
| २०. | प्रज्ञा पारमिता | २३ |
| २१. | शमथ-विपश्यना का सन्नद्ध मार्ग | २५ |
| २२. | शमथ-विपश्यना सन्नद्ध अद्‌भुत मार्ग | २७ |
| २३. | प्रज्ञोपाय समन्वित मार्ग | २९ |
| २४. | हेतु-फलयान | ३० |
| २५. | प्रयोजन एवं परिणामना | ३२ |
| २६. | समापन | ३२ |
| २७. | परिशिष्ट-१, ग्रन्थकार की सांक्षेपिक जीवनी | ३३ |
| २८. | परिशिष्ट-२, संदर्भ-सूची | ३५ |

# དཔར་སྐྲུན་ཆེད་བརྗོད།

རྒྱལ་བའི་གསུང་རབ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་གནད་བསྡུས་པ། ཤིང་རྟ་ཆེན་པོ་ཀླུ་སྒྲུབ་དང་ཐོགས་མེད་གཉིས་ཀྱི་ལམ་སྲོལ། དཔལ་མཉམ་མེད་ཇོ་བོ་ཆེན་པོའི་ཐུགས་ཀྱི་བཅུད་ཕྱུང་བ་ལྟ་བུའི་གདམས་པ་ཟབ་མོ། སྐལ་བ་དང་ལྡན་པའི་གང་ཟག་རྣམ་པ་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པའི་སར་བགྲོད་པའི་སྐྱེ་བོ་མཆོག་གི་ཆོས་ལུགས། ཆེ་བ་བཞི་དང་ཁྱད་ཆོས་གསུམ་གྱིས་བརྒྱན་པའི་ཆོས་བྱང་ཆུབ་ལམ་གྱི་རིམ་པ་མཉམ་མེད་ཙོང་ཁ་པ་ཆེན་པོས་ཐུགས་ཉམས་སུ་བཞེས་ཏེ། རང་ཉིད་ཀྱི་ཉམས་རྟོགས་དགོངས་པའི་ཀློང་དུ་ཇི་ལྟར་འཆར་བ་རྣམས་ཕྱི་རབས་ཀྱི་གདུལ་བྱ་རྣམས་ལ་ཐུགས་བརྩེ་བས་ཉེ་བར་དགོངས་ཏེ་ཉམས་མགུར་གྱི་ཚུལ་དུ་བསྒྲུལ་བའི་ལམ་རིམ་བསྡུས་དོན་ནམ་ལམ་རིམ་ཆུང་ངུར་གྲགས་པ་གདུལ་བྱ་བློ་གྲོས་མཆོག་དམན་མཐའ་དག་ལ་འཚམས་པའི་མན་ངག་ཁྱད་པར་ཅན། རྗེ་ཙོང་ཁ་པ་ཆེན་པོའི་གསུང་རབ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ཉིང་ཁུ་ལྟ་བུར་བཞུགས་པ་འདི་ཉིད་འཕགས་ཡུལ་གྱི་དོན་གཉེར་ཅན་རྣམས་ལ་ཕན་སེམས་ཀྱིས་ཀུན་ནས་བསླངས་ཏེ་གར་ཞ་བའི་མཁས་དབང་དངོས་གྲུབ་མཆོག་ནས་ཧིན་སྐད་དུ་ཕབ་བསྒྱུར་མཛད་པ་འདི་དབུས་བོད་ཀྱི་ཆེས་མཐོའི་གཙུག་ལག་སློབ་ཁང་ནས་ཏཱ་ལའི་བླ་མའི་འཕགས་བོད་པོད་ཕྲེང་ཁོངས་དཔར་སྐྲུན་ཞུས་པ་འདིས་འཕགས་ཡུལ་གྱི་སྐྱེ་བོ་དོན་གཉེར་ཅན་མང་པོར་ཕན་ཐོགས་ཏ་ཙང་ཆེན་པོ་ཡོང་བ་གདོན་མི་ཟ་བས། སྒྱུར་བ་པོ་དང་དཔར་སྐྲུན་བྱེད་པོ་ཡོངས་ལ་ཡི་རངས་བསྔགས་བརྗོད་ཞུ་རྒྱུ་ཡིན། ཞེས་ཕྱཱ་ཀ་དབུས་བོད་ཀྱི་ཆེས་མཐོའི་གཙུག་ལག་སློབ་ཁང་གི་ངེས་སྟོན་པ་ཟམ་གདོང་བློ་བཟང་བསྟན་འཛིན་གྱིས་ ༡༩༩༦ ཕྱི་ཟླ་ ༡༢ ཚེས་ ༥ བོད་མི་ཕྱི་ཧོར་ཟླ་ ༡༠ ཚེས་ ༢༥ འཇམ་མགོན་ཙོང་ཁ་པ་ཆེན་པོ་ཞི་བར་གཤེགས་པའི་དུས་ཆེན་ཁྱད་པར་ཅན་གྱི་ཉིན་སློབ་འདུན་བཟང་པོས་མཚམས་སྦྱོར་དང་བཅས་བྲིས་པར་དགེ་བར་གྱུར་ཅིག །

# प्रकाशकीय

समस्त जिन प्रवचनों का मर्मसंग्रह, आचार्य नागार्जुन तथा असङ्ग दोनों के मार्ग नय, आचार्य दीपङ्कर श्रीज्ञान जी के ज्ञान के रसोन्मेष सदृश उपदेश, सौभाग्यशाली विनेयजनों के लिए सर्वज्ञता-पद प्राप्ति हेतु उत्तमपुरुषीय मार्ग-व्यवस्था, चार महत्त्व तथा तीन विशेषताओं आदि से अलङ्कृत बोधिपथक्रम का आचार्य चोङ्खापा द्वारा स्वयं अनुष्ठान, अनुभूति एवं अधिगम करके जैसा स्वयं अनुभव किया, वैसा भावी विनेयजनों के लिए महाकरुणा से आप्लावित होकर दोहा के रूप में विरचित यह ''बोधिपथपिण्डार्थ'' अथवा लघुबोधिपथक्रम नाम से विख्यात उत्तम ग्रन्थ मन्द बुद्धिजनों के अनुकूल विशिष्ट उपदेश है ।

आचार्य चोङ्खापा जी के सभी प्रवचनों के सार के रूप में विद्यमान यह ग्रन्थ भारतवासी जिज्ञासुओं के हित को ध्यान में रखकर लाहुल के विद्वान् अङ्गरूप लाहुली द्वारा भोटभाषा से हिन्दी में अनूदित किया गया है । यह ग्रन्थ केन्द्रीय तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान के दलाई लामा 'भोट-भारती ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत प्रकाशित किया गया है । आशा है यह ग्रन्थ निश्चित रूप से अनेक भारतीय जिज्ञासुओं के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होगा । अतः मैं अनुवादक एवं प्रकाशन विभाग के सभी सदस्यों के प्रति साधुवाद एवं आभार प्रकट करता हूँ । यह प्रकाशकीय मञ्जुनाथ चोङ्खापा सुमतिकीर्ति जी के महापरिनिर्वाण दिवस के अवसर पर लिखा गया है ।

सारनाथ
५ दिसम्बर, १९९६ ई०

**सम्दोङ् रिनपोछे**
निदेशक

# आमुख

प्रस्तुत ग्रन्थ आचार्य सुमतिकीर्ति के बौद्ध धर्म सम्बन्धी ज्ञान का निष्कर्ष है । उन्होंने इसे अपने अनुभव के आधार पर विनयजनों को बोधिपथक्रम का सार संक्षेप में समझाने तथा तदनुसार साधना में प्रवृत्त कराने के प्रयोजन से परामर्श के रूप में लिखी गई एक अमूल्य कृति है । जिसे वे इस ग्रन्थ के समापन में संस्मरण (=བརྗེད་བྱང་) की संज्ञा देते हैं । इससे पहले वे बोधिपथक्रम या अनुक्रम विषयक (१) बृहत् बोधिपथक्रम =བྱང་ཆུབ་ལམ་རིམ་ཆེན་མོ། और (२) मध्यम बोधिपथक्रम=བྱང་ཆུབ་ལམ་རིམ་འབྲིང་། नाम के दो ग्रन्थ क्रमशः ईसवी सन् १४०२ और १४१५ में प्रणीत कर चुके थे । ལམ་རིམ་བསྡུས་དོན། नामक इस लघुकाय ग्रन्थ को उन्होंने ग-दन महा विहार में लिखा था । यूँ उनकी सभी कृतियाँ १८ जिल्दों में संग्रहीत हैं ।

भट्टारक सुमतिकीर्ति जो अपने जन्मग्राम से चोङ-ख-पा ही करके विश्रुत हैं, एक सुधारवादी आचार्य हुए हैं । उन्होंने तिब्बत के बौद्ध धर्म में आए विकार को तर्क, युक्ति और अपनी वक्तव्य शक्ति से दूर ही नहीं किया, बल्कि ग-दन[१] महाविहार की स्थापना के पश्चात् उन्होंने अपने अनुयायी भिक्षुओं को दर्शन-शास्त्र के अध्ययन-अध्यापन की ओर प्रवृत्त भी किया । यही वजह थी कि आज इन्हीं आचार्य की परम्परा वाले नवीन क-दम-पा (=བཀའ་གདམས་གསར་མ་) निकाय में सबसे अधिक विद्वान् एवं दर्शन-शास्त्र के आचार्य विद्यमान हैं ।

तिब्बत पर लाल चीन के पूर्ण आक्रमण (१९५९) से पूर्व तक इस निकाय के सभी बड़े-बड़े शिक्षा संस्थान जैसे-सेरा, डे-पुङ्ग, ग-दन और टशी-ल्हुन-पो आदि महाविहारों में सूत्र और तंत्र के साथ दर्शन शास्त्रों को पढ़ने-पढ़ाने की समुचित व्यवस्था थी और इनमें हजारों की संख्या में भिक्षु छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे ।

---

१. ग-दन महाविहार की स्थापना १४०९ ई० में हुई थी ।

बोधिपथ या मार्ग बुद्धत्व का मार्ग है । 'बोधिपथक्रमपिण्डार्थ' शीर्षक से ही हमें इस ग्रन्थ के विषय-वस्तु सम्बन्धी सूचना मिल जाती है । इसमें बोधिपथ की व्यवस्थान क्रमबद्ध परन्तु संक्षेप में बताया गया है । बोधि को प्राप्त करने के लिए पारमिताओं का चरित्र नितान्त आवश्यक होता है । आर्य ग्रन्थों के अनुसार जो बोधि के प्राप्ति के लिए यत्नवान् हो, उन्हें षड-पारमिताओं को ग्रहण करना चाहिए । भट्टारक सुमति कीर्ति ने आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान द्वारा विरचित ''बोधिपथप्रदीपम्'' के अनुरूप बुद्धवचन का सार पारमिताओं को इस लघुकाय ग्रन्थ में सुन्दर ढङ्ग से स्थापित किया है । पारमिता छः प्रकार के होते हैं—दान, शील, क्षांति, वीर्य, समाधि और प्रज्ञा । पारमिता का अर्थ पूर्णता है । जो पुद्गल बुद्धत्व के लिए प्रयत्नशील होते हैं, उन्हें इन दान, शील आदि गुणों में पूर्णता प्राप्त कर लेनी होती है । यही बोधिपथक्रम या बोधिसत्त्वचर्या कहलाती हैं ।

इस ग्रन्थ का प्रथम हिन्दी अनुवाद महामान्य वर्त्तमान् १४वें दलाई लामा जी की जिज्ञासा पर १९५९ में पूज्यपाद खुनु लामा तन-ज़िन-ग्यल-छ़न और नेगी सुशील ध्वज ने संयुक्त रूप से किया था । ग्रन्थ की उपयोगिता को देखकर १९८६ में प्रो० सेम्पा दोर्जे ने इसका दूसरी बार हिन्दी में अनुवाद किया । आंग्ल भाषा में इसका अनुवाद पहले ही प्रकाशित हो चुका था । भारतीय भाषा में अनुवाद करने का मेरा यह तीसरा प्रयास है । मैंने इस अनुवाद की प्रक्रिया में उपर्युक्त हिन्दी में अनूदित उन दोनों ग्रन्थों का भरपूर उपयोग किया है । एतदर्थ मैं परम श्रद्धेय नेगी रिन-पो-छे और आचार्य सेम्पा जी का हृदय से आभारी हूँ ।

मैंने प्रस्तुत अनुवाद के आदि में रचनाकार आचार्य चोङ-ख-पा की संक्षिप्त सी जीवनी लिखकर जोड़ दी है, जिससे हिन्दी के पाठक ग्रन्थ और ग्रन्थकार की महत्ता से अवगत हो सके । यद्यपि निकाय के निर्धारण में मेरा निवेश क-ग्युद-पा में है, परन्तु मेरे श्रद्धास्पद दो आचार्य टशी-ल्हुन-पो और डे-पुङ्ग महाविहार के गे-लुग्स-पा निकाय के कल्याणमित्र (=དགེ་བཤེས་) थे । जिनसे मुझे भट्टारक चोङ-ख-पा सुमति कीर्ति की किञ्चित कृतियों को पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । 'बृहत्बोधिपथक्रम' श्रेष्ठतम ग्रन्थ है । मैंने इसका उपदेश पूज्यपाद बाह्य मंगोल के बूरियत जनपद निवासी तथा डे-पुङ्ग महाविहार के

लब्धप्रतिष्ठ गे-शेस (=कल्याण मित्र) नवांग-त्रिमा जी से तीन वर्षों तक श्रवण किया । आज उसी ज्ञान के बलबूते पर भट्टारक सुमति कीर्ति के इस लघुतम ग्रन्थ को हिन्दी में अनुवाद करने की चेष्टा की है । मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि मेरे पूर्व के दो ग्रन्थ (विंशति और संभोटधातु व्यवस्थान) की भाँति इस बार भी मेरे विशेष अनुरोध पर परम आदरणीय निदेशक भदन्त सम्दोङ्ग रिन-पो-छे जी इस अनूदित ग्रन्थ का प्रकाशन अपने संस्थान की ओर से करवा रहे हैं । मैं निदेशक एस० रिन-पो-छे के इस सहानुभूति के लिए हृदय से कृतज्ञ हूँ ।

अन्त में, मैं डॉ० सोहनलाल शर्मा का अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे अनुवाद की भाषा को संशोधित कर अधिक शुद्ध रूप देने का कष्ट किया है । इस प्रकार इस अनुवाद के कृतकार्य से मैंने यदि किञ्चित पुण्य अर्जन किया हो तो उससे सर्व मंगलम् भवन्तु ।

जनवरी, १९९२
चण्डीगढ़-१४

**के० अंगरूप लाहुली**
रीडर
मध्य एशिया अध्ययन विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय,
चण्डीगढ़

## ग्रन्थकार की संक्षिप्त जीवनी

तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रवेश सर्वप्रथम ईसवी सन् ६४० में हुआ था । उस समय वहाँ की राजगद्दी पर सम्राट् स्रोङ-च़न-गम्पो विराजमान थे । सम्राट् की योजना और अमात्य थोन-मी के सम्यक् प्रयास से उन्हीं दिनों भोट भाषा की नई लिपि और व्याकरण ही नहीं बना बल्कि बुद्धवचन के भाषान्तरण का कार्य भी आरम्भ हुआ था । इस प्रकार सबसे पहले थोन-मी संभोट ने ही करण्ड व्यूह सूत्र, रत्नमेघसूत्र तथा कर्मशतक आदि २१ लोकेश्वरीय सूत्र-तंत्र के ग्रन्थों का अनुवाद किया था । भोट भाषा में बुद्धवचन के ये प्रथम अनूदित ग्रन्थ थे । तदनन्तर भोट देश में बुद्ध वचन के रूपान्तरण का कार्य निरन्तर जारी रहा । ईसवी सन् की ९वीं शताब्दी में सम्राट् ठि-स्रोङ-दे-च़न के राजकाल में तत्कालीन नालन्दा महा विद्यालय के मूर्धन्य विद्वान् उपाध्याय शान्तरक्षित और आचार्य पद्मसंभव के अतिरिक्त भारत वर्ष के विभिन्न क्षेत्रों से १०८ पण्डित अनुवाद के कार्य में सहयोग के लिए आमंत्रित होकर तिब्बत पहुँचे थे और उतने ही बल्कि उससे भी कहीं अधिक भोट लो-च़-वा (=दुभाषिए) भी इस पुनीत कार्य में जुट गए थे और उन्होंने कितने ही सूत्र और तंत्र के ग्रन्थों का अनुवाद किया था ।

उसके पश्चात् सम्राट् ठि-रल-प-चन के समय (८७७-९०१ ई०) तिब्बत में पहुँचनेवाले भारतीय पण्डितों में उपाध्याय जिनमित्र, सुरेन्द्रबोधि, शीलेन्द्रबोधि, दानशील तथा बोधिमित्र आदि प्रमुख थे । इन पण्डितों ने अनुवाद का कार्य ही नहीं किया बल्कि सम्राट् की इच्छा के अनुसार पूर्व अनूदित ग्रन्थों का संशोधन भी किया था । इस प्रकार उस अवधि में अनूदित एवं संशोधित ग्रन्थों को काल की दृष्टि से आद्य रूपान्तरित ङग-ञिङ-मा (=प्राक गुह्य तंत्र) नाम पड़ा था । तत्पश्चात् ईसवी सन् ९७८ में लो-च़-वा रिन-चेन-ज़ङ-पो (=रत्नभद्र) ने जिन सूत्र-तंत्र ग्रन्थों के अनुवाद का कार्य आरम्भ किया था, उसे ङग-सार-मा (=नवीन गुह्य तंत्र) के नाम से जाना जाने लगा । इस प्रकार पश्चात् अनूदित इस नवीन तंत्र के अनुयायियों में तिब्बत में विकसित बौद्ध धर्म के तीनों निकायों जैसे, क-ग्युद-पा, स-क्य-पा और गे-लुग्स-पा का समावेश हुआ है । आद्य अनूदित गुह्य तंत्र के अनुसरण करनेवालों को ञिङ-म-पा (प्राचीनक) कहा गया । कालक्रम से इस

ञिङ-मा निकाय का प्रचार एवं प्रसार संपूर्ण तिब्बत, भूटान और हिमालय क्षेत्र के इस ओर की तराइयों में हुआ ।

नवीन तंत्र के अनुयायियों में राज भिक्षु बोधिप्रभ एक ऐतिहासिक पुरुष हुए हैं । इन्हीं के अनुरोध पर ईसवी सन् १०४२ में आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान, बौद्ध धर्म में आए विकार को सुधारनें के लिए नालन्दा से तिब्बत पहुँचे । आचार्य पहले तीन वर्ष ङ-रिस प्रदेश और तत्पश्चात् ल्ह-सा के निकट स्ञे-थङ नामक स्थान में नौ वर्षों तक रहकर धार्मिक सुधार और ग्रन्थों के अनुवाद में व्यस्त रहे । आचार्य के अनुवाद में सहयोग के लिए भोट दुभाषी नग-छ़ो, रत्नभद्र, गे-वई-लो-डोस और शाक्य लो-डोस आदि नियुक्त हुए थे । आचार्य के आचार प्रधान परन्तु तंत्र संश्लिष्ट उपदेशों का उनके भोट शिष्य खु, ङोग, डोम-तोन आदि कल्याणमित्रों ने बृहत् रूप से प्रचार-प्रसार किया, जो कालक्रम से क-दम-पइ-छोस (=वचनोपदेश धर्म) के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

इसी क-दम-पा का आगे चलकर आचार्य च़ोङ-ख-पा ने संपूर्ण तिब्बत में प्रचार किया और स्थान-स्थान पर इसके विहार और संघाराम स्थापित किए । इन्होंने तिब्बत के बौद्ध धर्म को एक नयी दिशा प्रदान की थी ।

आज से ६ सौ वर्ष पूर्व (१३५७ ई० में) तिब्बत के पूर्वी संभाग अम्-दो नामक प्रदेश के च़ोङ-खा ग्राम में एक मेधावी बालक पैदा हुए । इनके पिता का नाम द-र-ख-छे-लु-बुम-गे[१] और माता का नाम शिङ-मो-आ-छोस् था । गाँव के वृद्धजन इन्हें प्यार से ज़-आ-छोस् कहकर पुकारा करते थे । इनसे छह सन्तान उत्पन्न हुई, आचार्य चोङ-ख-पा उनमें चौथे पुत्र थे । इनके उद्‌भव के सम्बन्ध में मंजुश्रीमूलतंत्र, लंकावतारसूत्र, डाकिणीगुह्यतंत्र, पद्म-थङ-यिग और पद्म-क-छेम्स आदि भोट-भारतीय मनीषियों के अनेकों अनेक ग्रन्थों में भविष्यवाणी की गई है । इस प्रसंग में तिब्बत के एक निष्णात पंडित लोङ-दोल-लमा-रिन-पो-छे की श्लोकबद्ध स्तुति निम्न प्रकार से है—

---

१. ད་ར་ཁ་ཆེ་ चीन के मिङ्ग राजवंश= Ming dynasty द्वारा सुमतिकीर्ति के पिता को मानार्थ प्रदत्त उपाधि विशेष का नाम है । इसी राजवंश के सम्राट् ने चोङ-ख-पा को चीन आने का निमंत्रण भेजा, परन्तु वे स्वयं न जाकर अपना प्रमुख शिष्य शाक्य ज्ञान को प्रतिनिधि बनाकर चीन भेजा ।

རྗེ་བླ་མ་དེ་ཉིད་གདུལ་བྱའི་དོན་དུ་སྐྱེ་རབས་ཀྱི་ཕྲེང་བ་ཇི་ལྟར་བཞེས་པའི་ཚུལ་ནི། ཀློང་རྡོལ་བླ་མ་རིན་པོ་ཆེའི་གསུང་ལས།

བདེ་སྟོང་རྣམ་རོལ་བློ་མཆོག་ཤར་རིའི་རྩེར། །
འཕྲིན་ལས་བཟང་པོའི་འོད་སྟོང་རབ་རྒྱས་པ། །
རབ་གྲགས་གདུལ་བྱའི་པད་ཚལ་རྒྱས་མཛད་པའི། །
ཉིན་བྱེད་དབང་པོ་ཙོང་ཁ་པ་ལ་འདུད། །
རྡོ་རྗེ་འཆང་གི་སྤྲུན་ང་ར་འཇམ་དཔལ་དབྱངས། །
རྒྱལ་བ་དབང་པོའི་སྤྲུན་སྣར་སྙིང་སྟོབས་ཅན། །
རྨད་བྱུང་ཞིང་དུ་སེང་གེ་ང་རོ་སྒྲེ། །
ཐུབ་པའི་སྤྲུན་སྣར་མོས་པའི་བློ་གྲོས་མཚན། །
འདུལ་བ་འཛིན་པ་དགྲ་བཅོམ་ཉེ་བར་འཁོར། །
གཏད་རབས་བཞི་པ་ཉེར་སྦས་ཨུཔ་གུཔྟ། །
བྱམས་པའི་སྤྲུན་སྣར་གཞོན་ནུ་ནོར་བཟང་གྲགས། །
དུས་ཀྱི་འཁོར་ལོའི་སྤྲུན་སྣར་ཟླ་བ་བཟང་། །
ས་ར་ཧའི་སྤྲུན་སྣར་ཀླུ་སྒྲུབ་ཞབས། །
ཁ་ཆེ་ཁྲི་བརྟན་མ་ཧི་ཀྵ་དྲར་གྲགས། །
ཤར་ཕྱོགས་རི་ཙྪ་མཁས་པ་རྟྣའི་མཚན། །
དྲི་མེད་བླ་མས་ལུང་བསྟན་ཨ་ཏི་ཤ། །
པདྨ་ཀ་རས་ང་དང་རྒྱུད་གཅིག་གསུངས། །
སློབ་དཔོན་ཆེན་པོའི་སྤྲུན་སྣར་བཻ་རོ་ཞེས། །
ཀུ་ཀུ་རི་པའི་སྤྲུན་སྣར་སེམས་དཔའི་ཚུལ། །
རྔོག་ལོའི་སྤྲུན་སྣར་བློ་ལྡན་ཤེས་རབ་རྗེ། །

ན་རོའི་སྤྲིན་སྟར་གྲུབ་དབང་མར་པའི་མཚན། |
ཟངས་ཆེན་དར་མའི་སྤྲིན་སྟར་ཚོ་སྣ་པ། |
ཡབ་གཅིག་ལུང་བསྟན་གསང་བའི་བདག་པོར་གྲགས། |
ཡུམ་གྱི་ལུང་བསྟན་མགོན་པོ་སྤྲིན་རས་གཟིགས། |
མཁན་པོས་ལུང་བསྟན་རྡོ་རྗེ་འཇིག་བྱེད་དངོས། |
རྒྱལ་བས་ལུང་བསྟན་འཇམ་དཔལ་བྱིས་པའི་གཟུགས། |
བྲམས་པས་ལུང་བསྟན་གསང་བའི་བདག་པོར་གྲགས། |
ཕྱག་རྡོར་ལུང་བསྟན་གངས་ཅན་འགྲན་ཟླ་བྲལ། |
སྐྱོང་བཙན་ལུང་བསྟན་ཤར་ཕྱོགས་སྐྲུ་འཁྲུངས་པ། |
མ་གཅིག་ལུང་བསྟན་སངས་རྒྱས་བདུན་པར་གྲགས། |
པད་འབྱུང་ལུང་བསྟན་ལས་རབ་བདེ་བ་རྩལ། |
ལབ་ཀྱིས་སྒྲོན་མས་ལུང་བསྟན་མངོན་ཤེས་ཅན། |
ཧེ་རུ་ཀ་ཡིས་ང་དང་དབྱེར་མེད་གསུངས། |
མི་ཕམ་མདུན་སར་འཇམ་དཔལ་སྙིང་པོར་གྲགས། |
མ་འོངས་རྒྱལ་བ་སེང་གེ་ང་རོ་ཞེས། |
ད་ལྟ་འཛམ་གླིང་བྱེ་བ་ཕྲག་བརྒྱ་རུ། |
འཕྲུལ་གྱི་བཀོད་པ་སྟོན་ལ་གསོལ་བ་འདེབས། |
ཞེས་གསུངས་སོ།།

बालक को अल्पावस्था में ही शर-चुङ नामक तपोवन में धर्मस्वामी कर्म-रोल-पइ-दो-जे (=कर्मलीला वज्र) के पास शिक्षा-दीक्षा के लिए भेजा गया । शील बुद्ध शासन की मूल भित्ति होती है । परिपक्व वय अर्थात् बीस वर्ष की अवस्था से पहले किसी को प्रातिमोक्षशील उपसम्पदा नहीं दी जाती । अत:

धर्मस्वामी ने इन्हें पहले पंचशील देकर उपासक बनाया और कुन-ग-ञिङ-पो (=आनन्द गर्भ) नाम रखा ।

एक समय की बात है कि दोन-डुब-रिन-छेन (=सिद्धार्थरत्न) नामक एक अन्य धर्मस्वामी आमंत्रित होकर चोङ-ख-पा के घर पहुँचे । उस समय बालक की अवस्था तीन वर्ष की थी । धर्माधीश बालक की विलक्षण बुद्धि से बड़े प्रभावित थे । अत: उन्होंने चोङ-ख-पा के पिता को भेंट स्वरूप भेड़-बकरियों की रेवड़ और ढेर सारी धन-दौलत देकर कहा कि आप का अपना यह बालक मुझे सौंप दें । मैं इनकी शिक्षा-दीक्षा की सारी व्यवस्था स्वयं करवा दूँगा । चोङ-ख-पा के पिता ने बालक को सहर्ष उन्हें सौंपने का वचन दिया । धर्माधीश बालक की पात्रता से पूर्णतया अवगत थे । अत: सात वर्ष की अवस्था (१३६२) को प्राप्त करते-करते उन्होंने तंत्र में दीक्षित कर उनका नाम दोन-योद-दो-जे (=अमोघवज्र) रख दिया । दूसरे वर्ष यानी १३६३ ई० में जब बालक सात वर्ष के पूरे हुए तो उन्हें धर्माधीश के पास भेज दिया गया[1] । धार्मिक कार्य में बिलम्ब करना दोषयुक्त होता है । अत: धर्माधीश सिद्धार्थरत्न ने बालक को अपने उपाध्यायकत्व में उसी वर्ष प्रव्रज्य ग्रहण करवाकर श्रामणेर की दीक्षा दी । तत्पश्चात् उनका श्रामणेर नाम लो-ज़ङ-डग-पा (= सुमतिकीर्ति) रख दिया । तबसे लेकर १५ वर्ष की अवस्था तक वह बालक उन्हीं के पास रहकर शिक्षा ग्रहण करता रहा ।

यह सुप्रसिद्ध है कि तिब्बत का मध्य संभाग वुस्-चङ्ग प्रदेश प्राचीन काल से ही बोधिसत्त्वों के अवतार धर्मराजाओं, पण्डितों, विद्वानों और सिद्धों का गढ़ तथा बौद्ध विद्याओं का प्रमुख केन्द्र रहा है । बालक सुमतिकीर्ति को जब अच्छी शिक्षा और अच्छे अध्यापकों की आवश्यकता प्रतीत होने लगी तो वह मध्य देश की ओर अध्ययनार्थ प्रस्थान करने का विचार करने लगे । उन्होंने अपने मन की बात जब धर्माधीश के सामने प्रकट की तो वे एक दम शिष्य के विचार से सहमत हुए । उन्होंने सुमतिकीर्ति को भावी अध्ययन का सुझाव सूची बना करके ही नहीं

---

१. कुछ विद्वान् बालक को आठ वर्ष की अवस्था में धर्माधीश के पास भेजने की बात लिखते हैं ।

दिया, बल्कि मार्ग-व्यय आदि का आवश्यक सहयोग भी प्रदान किया । उन्होंने भावी अध्ययन की जो रूप-रेखा श्लोकबद्ध सूची बनाकर दी थी वह बालक सुमतिकीर्ति से कहीं खो गई थी । खोजने पर भी वह सूची उन्हें नहीं मिली । किन्तु उनमें से जो पंक्तियाँ उन्हें याद थीं, वह निम्न प्रकार से हैं :

གཞོན་ནུ་བློ་བཟང་གྲགས་པ་ཁྱོད། |
སྔོན་སྦྱངས་དགེ་བའི་ལས་འཕྲོ་ཅན། |
སྔོན་ཆེ་དམ་ཆོས་བདུད་རྩིའི་རོ། |
འཐུངས་པའི་བག་ཆགས་ཡོད་པར་ངེས། །ཞེས་པ་དང་།

ཡུམ་ཆེན་རྒྱས་འབྲིང་བསྡུས་གསུམ་གྱི། |
རྒྱན་དུ་གྱུར་པའི་མངོན་རྟོགས་རྒྱན། |
ཐོག་མར་བསླབ་ཅིང་ནན་ཏན་བྱ། |
དེ་ལ་མཁས་པར་གྱུར་པ་ན། |
ལུང་ཆོས་ཀུན་ལ་འཕྲིག་ཚུད་འགྱུར། |
དེ་ཡང་སེམས་ཀྱི་ཟུར་ལ་ཞོག |
དེ་ནས་བྱང་ཆུབ་སེམས་པ་ཡི། |
ལམ་དང་སྤྱོད་པའི་རྣམ་གཞག་དག |
སྟོན་པར་བྱེད་པའི་མདོ་སྡེ་རྒྱན། |
མཁས་པའི་ཡན་ལག་དག་ཏུ་བསླབ། |
འཁོར་བ་མྱ་ངན་འདས་པ་ཡི། |
རྟེན་དུ་སྟོན་པའི་ཆོས་དང་ནི། |
ཆོས་ཉིད་རྣམ་འབྱེད་བསྟན་བཅོས་དང་། |
ཐོག་མ་ཐ་མ་རྣམ་སྤངས་པའི། |
དབུ་མའི་ལམ་ནི་སྟོན་པས་ན། |

དབུས་དང་མཐའ་ནི་རྣམ་འབྱེད་དག |
སེམས་ཀྱི་ཆོས་ཉིད་དག་པ་ནི། |
སེམས་ཅན་ཀུན་ལ་ཡོད་པ་སྟེ། |
དེ་ཉིད་བདེ་གཤེགས་སྙིང་པོར་ནི། |
སྟོན་བྱེད་ཐེག་ཆེན་རྒྱུད་བླ་མ། |
བྱམས་ཆོས་ལྔ་པོ་དེ་དག་ལ། |
མཁས་པར་བྱེད་པའི་གོ་ཆ་གྱིས། |
རྒྱས་པའི་བསྟན་བཅོས་རྣམ་འགྲེལ་དང་། |
འབྲིང་དུ་སྟོན་པའི་རྣམ་ངེས་དང་། |
ཤིན་ཏུ་བསྡུས་པ་རིགས་ཐིགས་ཏེ། |
ལུས་དང་འདྲ་བའི་བསྟན་བཅོས་གསུམ། |
གཏན་ཚིགས་ཐིགས་པ་འབྲེལ་བརྟག་དང་།|
རྒྱུད་གཞན་སྒྲུབ་པ་རྩོད་རིགས་ཏེ། |
འཕྲོས་པ་ཡན་ལག་ལྔ་བུ་ཟེར། |
ཆོས་ཀྱི་གྲགས་པ་ལས་བྱུང་བའི། |
ཚད་མ་སྡེ་བདུན་འཛམ་གླིང་ན། |
སངས་རྒྱས་བསྟན་པ་གསལ་བྱེད་པ། |
ཉི་མ་ཟླ་བ་ལྔ་བུར་གྲགས། |
དེ་ཡི་འོག་ཏུ་དེ་རྣམས་སློབས། |

इस बीच की कुछ पंक्तियाँ वह भूल गए थे । आगे की एकाध पंक्ति जो उन्हें याद थी, वह निम्न प्रकार से हैं :—

བློ་གྲོས་བཟང་ལྡན་ཁྱོད་ཀྱིས་ནི། ।
མཐའ་བྲལ་ཆེན་པོའི་ལྟ་བ་ལ། ।
གལ་ཏེ་མོས་པ་ཡོད་གྱུར་ན། ।
འཕགས་པ་ཀླུ་སྒྲུབ་ཀྱིས་མཛད་པའི། ।
དབུ་མ་རིགས་ཚོགས་དྲུག་རྣམས་དང་། ।
དེ་ཡི་རྗེས་འབྲང་ཟེར་བ་ཞིག་ཡོད་དེ། । आदि आदि, शेष विस्मृत ।

यही सब वजह थी कि सुमतिकीर्ति जब कभी धर्माधीश सिद्धार्थरत्न की चर्चा करते तो उनका मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता, आँखें एकदम नम हो जाती थीं और कण्ठ अवरुद्ध हो जाता था । इस प्रकार सोलह वर्ष[१] का वह युवक ज्ञान की खोज में अम्दो प्रान्त से मध्य देश (=वुस-चङ्ग) की ओर चल पड़ा । इस बीच का रास्ता लम्बा था । यात्रा के लिए सभी आवश्यक सामग्री वे अपनी पीठ पर उठाकर पाँच-छह माह के मार्ग पर अकेले ही चल पड़े । वे एक नयी खोज और नये ज्ञान की लालसा से आगे बढ़ते जाते थे । मार्ग का कष्ट और कठिनाइयों को वे यात्रा की एक अनिवार्य भवितव्यता मानकर आगे बढ़ते जाते थे । इस प्रकार एक दिन वे अपने गंतव्य स्थान 'वुस' क्षेत्र के डि-गुङ्ग-थिल नामक स्थान पर पहुँच गए । वे यात्रा से क्लान्त तो थे ही, अतः कुछ समय वही पर विश्राम कर, उस अवधि में ङि-गुङ्ग-पा निकाय के तत्कालीन प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य डग-प-जङ-छुब (=कीर्तिबोधि) से 'महायानचित्तोत्पाद विधि' तथा छग-छेन--ङ-दन (=पञ्चमहामुद्राप्रयोग) आदि उपदेश ग्रहण किया । १३८७ ई० में इन्होंने धर्मराज आचार्य कीर्तिबोधि की जीवनी भी लिखी थी[२] ।

सुमतिकीर्ति शास्त्र-ज्ञान प्राप्त करने के लिए वहाँ से अन्यत्र जाना ही चाहते थे कि कुछ मित्रों की बातों में आकर न चाहते हुए भी वे छ़ल-पा नामक

१. मंगोल में बौद्ध धर्म का इतिहास में १७ वर्ष की अवस्था में प्रस्थान करने की बात लिखी हुई है । लेख - गुश्री छे़-फेल, पृ० १०३, सारनाथ, १९६५

२. राहुल सांकृत्यायन, तिब्बत में बौद्ध धर्म, उन्नीस वर्ष की छोटी अवस्था (१३७६ ई०) में उसने अपना प्रथम ग्रन्थ लिखा, पृ० ५०

कस्बे में जाकर विश्वविख्यात चिकित्साशास्त्री कोन-चोग-क्यब्स (=रत्नत्रात) से आयुर्विज्ञान की शिक्षा ग्रहण करने लगे । इस प्रकार उन्होंने आयुर्वेदीय ग्रन्थ 'वैद्याष्टाङ्ग हृदय वृत्ति' आदि का अध्ययन समाप्त कर शीघ्र चिकित्सा विज्ञान एवं शल्य-शास्त्र दोनों ही क्षेत्रों में निपुणता प्राप्त कर ली । वे वहाँ पर अधिक देर तक न रहकर स्ञ-नम प्रदेश के दे-व-चन (=सुखावती) नामक शिक्षा संस्थान की ओर बढ़ने लगे, जहाँ विभिन्न शास्त्रों के ख्याति प्राप्त विद्वान् लोग निवास कर रहे थे । वहाँ पर सुमतिकीर्ति ने स्ञ-थङ निवासी कल्याणमित्र टशी सेङ्गे (=मंगल सिंह) और विहारवासी गे-कोङ्स आदि विद्वानों से धर्मोपदेश ग्रहण किया । पाठाचार्य योन-तन-ग्य-छो (=विद्या सागर) तथा सह-पाठाचार्य उज्ञन-पा (=उद्यानी) आदि आचार्यों के सहयोग से उन्होंने विशेषकर 'अभिसमयालंकारनामप्रज्ञापारमितोपदेशशास्त्र' का मूल टीका सहित अध्ययन किया । आचार्यगण उनकी कुशाग्र बुद्धि से मुग्ध रहते थे । महायान सूत्रालंकार का अध्ययन वे दो-मद (=अम्दो) में रहते समय कर चुके थे । तथापि दे-व-चन संस्थान की नयी अध्ययन प्रणाली वहाँ के एक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् कल्याणमित्र जम-रिन (=मञ्जुरत्न) जो मैत्रेय के पाँचों ग्रन्थों (བྱམས་ཆོས་སྡེ་ལྔ་) में अग्रणी पण्डित माने जाते थे, से सीखी ।

द्रुम शशक वर्ष यानी १३७५ में सुमतिकीर्ति प्रथम बार सङ-कु और दे-व-चन आदि विद्या केन्द्रों में जाकर शास्त्रार्थ करने लगे । यह ज्ञातव्य है कि दूसरे शिक्षा संस्थानों और विद्या केन्द्रों में जाकर वहाँ के छात्रों और विद्वानों के साथ शास्त्र चर्चा के नाम पर शास्त्रार्थ करना तत्कालीन शिक्षा जगत् की एक प्रणाली थी । जिस से छात्र को अपनी बुद्धि और विषय ज्ञान का आभास हो जाता था । उस समय सुमतिकीर्ति की अवस्था केवल १९ वर्ष की थी । परन्तु उनकी मधुर वाणी एवं वक्तृत्व शक्ति से सभी लोग बड़े प्रभावित होते थे ।

वहाँ से वे चङ्ग प्रदेश की यात्रा पर निकले । वे सीधा स-क्या विहार की ओर जाना चाहते थे, परन्तु एक जो-नङ-पा[1] सहयात्री की सलाह पर उन्होंने

---

१. जो-नङ-पा उपनिकाय ११वीं सदी में अस्तित्व में आया था । लामा तारानाथ इसी जो-नङ-पा परम्परा में एक प्रसिद्ध विद्वान् हुए हैं । इन्होंने 'भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास' लिखा था ।

रिन-पुङ्स के ग्यङ-खर-फु की यात्रा की, तत्पश्चात् ञङ-तोद-खर की ओर बढ़ते हुए ज-लु[१] नामक एक ऐतिहासिक स्थान पर पहुँचे । वहां पर उन्हें आचार्य बु-स्तोन का परम्परावादी तथा विहारवासी महोपाध्याय रिन-छेन-नम-ग्यल (=रत्नविजय) मिले तो उन्होंने उनसे चक्रसंवर आदि कुछ तंत्रों के उपदेश और अभिषेक ग्रहण किया । उसके पश्चात् वे नर-थङ विद्यापीठ की ओर निकल पड़े । नर-थङ की यात्रा समाप्त कर वे क्रमशः स-क्य (=पाण्डुभूमि) महाविहार पहुँचे ।

उस समय विहार में कोई वार्षिक अवकाश चल रहा था । अतः अध्ययन और अध्यापन का कार्य बन्द था । बहुत से छात्र और अध्यापक भी इधर-उधर चले गए थे । अतः सुमुतिकीर्ति तब तक के लिए स-ज़ङ (=मृत्सना) नामक क्षेत्र की ओर चल दिए । जहाँ पण-छेन-मति-पा और लो-छेन-नम-ज़ङ (=महादुभाषीक्षितिभद्र) से व्याकरण, काव्य और छन्द-शास्त्र आदि सामान्य साहित्य का अध्ययन करते रहे । उन्हीं दिनों आत्मज्ञानी ये-शेस-ग्यल-छ़न (=ज्ञानध्वज) से उन्होंने ज्योतिष विद्या भी सीख ली ।

विहार के अवकाश के पश्चात् यानी पढ़ाई आरम्भ हो जाने पर सुमतिकीर्ति पुनः स-क्या पहुँचे और वहाँ पर प्रज्ञापारमिता शास्त्र को मुद्दा बनाकर शास्त्रार्थ करने लगे[२] । यह सुविदित है कि शिक्षा संस्थानों में जाकर शास्त्रार्थ करने की परिपाटी प्राचीन भारतीय गुरुकुलों की देन थी । तिब्बत की सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति भारतीय परम्परा पर आधारित होती थी । अतः वहाँ के विद्या केन्द्रों में भी शास्त्रार्थ आयोजित किए जाते थे । यह एक प्रकार से विद्यार्थियों की बुद्धि परीक्षण की कसौटी समझी जाती थी । शिक्षा जगत् की यह आदर्शमय प्रथा आज भी तिब्बत के मठीय शिक्षा संस्थानों (=विहारों) में प्रचलित

---

१. ज-लु का प्रसिद्ध बौद्ध विहार ११वीं शताब्दी में स्थापित किया गया था । बु-स्तोन महान ने लम्बे समय तक यहाँ रहकर साहित्य सृजन और विद्या के प्रचार-प्रसार में समय व्यतीत किया था ।

२. अम्दो वासी थऊ-क्रन सुमतिसूर्य द्वारा ईस्वी सन् ८०१ में रचित 'डुब-थ-शेल-ग्यी-मे-लोङ' एक अति प्रसिद्ध ग्रन्थ ।

है । इस प्रणाली को भारत वर्ष में स्थित तिब्बती विहारों में भी देखा जा सकता है ।

स-क्या विहार में शास्त्रार्थ की स्पर्धा-सभा समाप्त कर लेने पर सुमतिकीर्ति ल-तोद-ज़ङ, दर-ज़ङ-दन, ङम-रिङ, ग-रोङ, जो-नङ और बो-दोङ शिक्षा संस्थानों में गए । वापसी में चि-वो-ल्ह और ल्हो-खा महा विद्या मन्दिर ओर और नर-थङ विहार आदि कितने ही शिक्षा संस्थानों और विद्या केन्द्रों पर जा-जाकर उन संस्थाओं के छात्रों के साथ विभिन्न पहलुओं पर शास्त्रार्थ करते रहे और विद्वानों तथा शास्त्रकारों से शास्त्र भी सीखते रहे । चे़-छेन नामक विहार की ग्रीष्मकालीन कक्षा के समय उन्होंने आचार्य कुन-ग-पल (=आनन्दश्री) से एक बार पुनः प्रज्ञापारमिताशास्त्र का आद्योपान्त उपदेश ग्रहण किया ।

आचार्य आनन्दश्री, सुमतिकीर्ति की विनयशीलता एवं विद्या के प्रति लगन से बड़े हर्षित थे । इस बीच सुमतिकीर्ति ने आचार्य से अभिधर्म को पढ़ाने के लिए प्रार्थना की तो आनन्दश्री कहने लगे कि मैं अभिधर्म को तो अच्छी तरह जानता था, परन्तु अब तक छात्रों की इस विषय के प्रति अभिरुचि कम होने के कारण, मेरा अपना भी इस विषय से संपर्क टूट-सा गया है । फलतः इस विषय को मैं भी थोड़ा-सा भूल गया हूँ । यदि आपको पढ़ाना ही पड़े तो इससे पहले मुझे स्वयं इसका थोड़ा-सा अध्ययन कर लेना पड़ेगा । अभिधर्म से पूर्व प्रज्ञापारमिता शास्त्र के साथ-साथ प्रमाणवार्तिक भी पढ़ लेना चाहिए था, परन्तु इस समय मेरी तबीयत कुछ ढीली सी चल रही है । अतः मैं आपको भली प्रकार पढ़ा नहीं सकता हूँ । रेद-द-वा मेरा एक सुविज्ञ छात्र है । वह एक दार्शनिक पण्डित भी है । अभिधर्म में उनकी पैठ बहुत अच्छी है । यदि आप चाहें तो अभिधर्म का उपदेश उनसे ग्रहण कर सकते हैं । अन्यथा सरसरी तौर पर तो मैं भी पढ़ा ही दूँगा ।

भट्टारक रेद-द-वा कुमारमति उस ग्रीष्म ऋतु में स-क्या से चे़-छेन (=महाशिखर) विहार में आए हुए थे । सुमतिकीर्ति आचार्य आनन्दश्री के कथनानुसार उनके पास जाकर अभिधर्म का अध्ययन करने लगे । रेद-द-वा के

गम्भीर शास्त्र ज्ञान एवं वाग्मिता से वे बड़े प्रभावित हुए । आचार्य भी सुमतिकीर्ति के विद्वत्तापूर्ण प्रश्नों और तथ्यपरक तर्कों से इतने चकित हुए कि कहने लगे—आपको पढ़ाने के लिए पहले अपने आपको सावधान हो लेने की आवश्यकता है ।

भोट विश्वासों के अनुसार भट्टारक रेद-द-वा कुमारमति और सुमतिकीर्ति के मध्य गुरु-शिष्य का सम्बन्ध केवल इसी जन्म में ही नहीं, अपितु पूर्व जन्मों में भी इनमें निरन्तर सम्बन्ध स्थापित रहा है । यद्यपि रेद-द-वा ने बचपन से ही प्रव्रज्या ग्रहण कर ली थी, परन्तु उपसम्पदा उन्होंने पूर्ण विकसित अवस्था में ही ली । वे बड़े योग्य एवं प्रज्ञा सम्पन्न व्यक्ति थे । सूत्र या तंत्र के किसी भी ग्रन्थ को एकाध बार श्रवण कर लेने के पश्चात् वे उस विषय से पूर्णरूपेण अवगत हो जाते थे । एक समय तिब्बत में माध्यमिक दर्शन और प्रमाणशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन की परम्परा टूट-सी गई थी और विद्वान् लोग इस विषय को भूल से गए थे । भट्टारक रेद-द-वा ने ही नागार्जुन और असंग के ग्रन्थों की सहायता से इन विषयों का ज्ञान पुनः विकसित किया था । जिससे इनकी प्रसिद्धि पर चार चाँद लग गए । ये सारी बातें इनकी जीवनी में सविस्तार उल्लिखित है ।

महाशिखर विहार की ग्रीष्मकालीन कक्षा के विसर्जन के पश्चात् गुरु-शिष्य दोनों वहाँ से ञङ-तोद प्रदेश में स्थित सम-लिङ नामक विहार की ओर यात्रा के लिए निकल पड़े । सम-लिङ (=आसद्वीप) विहार पहुँच कर सुमतिकीर्ति ने आचार्य से एक बार पुनः माध्यमिक दर्शन श्रवण किया । हेमन्त-कालीन कोर्स के समय वे पुनः अपने मातृ संस्थान दे-व-चन पहुँचे और वहाँ से क्योर-मो-लुङ विहार में जाकर विनय वाचस्पति क-जी-पा लो-सल (=स्फुटमति[1]) से विनय सूत्र और उसके सहायक ग्रन्थों का अध्ययन किया । उन दिनों वे मूलविनयसूत्रटीका (=མདོ་རྩའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་) के सत्रह पन्ने प्रतिदिन कण्ठस्थ भी कर लिया करते थे ।

---

१. "विनय में इनका गुरु बु-स्तोन का शिष्य (द्मर-स्तोन) ग्य-म्छो-रिन्-छेन था ।" राहुल सांकृत्यायन, तिब्बत में बौद्ध धर्म, पृ० ५० ।

एक दिन की बात है कि सभी भिक्षु नित्य की भांति सांघिक चाय में उपस्थित हुए । चाय के समय 'भगवतीप्रज्ञापारमिताहृदय' सूत्र का पाठ किया जाता था, तत्पश्चात् भिक्षु संघ कुछ क्षण चित्त को एकाग्र कर समाधि में स्थित हो जाते थे । उस दिन सुमतिकीर्ति भी एक स्तंभ के सहारे अपने शरीर को सीधा कर, स्मृति को उपस्थित कर तथा समाहित चित्त हो समाधि में ऐसे विलीन हो गए कि सांघिक चाय के सभी कार्यक्रम सम्पन्न होने के पश्चात् भी वे समाधि के प्रीति सुख में निमग्न रह गए । उसी वजह से क्योर-मो-लुङ विहार के संघाराम में स्थित वह स्तंभ आज तक (साम्यवादी लाल रक्षकों के उत्पात तक) तिङ-ङे-ज़िन-क-वा (=समाधि स्तम्भ) के नाम से ख्यात है ।

इस प्रकार सुमतिकीर्ति वुस-चङ्ग संभाग के लगभग सभी प्रसिद्ध शिक्षा संस्थानों और विद्या केन्द्रों का भ्रमण कर तथा विभिन्न आचार्यों और विद्वानों से सूत्र और तंत्र आदि शास्त्रों के उपदेश ग्रहण करने के पश्चात् एक बार डम-रिम विहार में रह कर विश्राम कर ही रहे थे कि इतने में अपनी जन्म भूमि अम्दो से वुस प्रदेश पहुँचे कुछ तीर्थयात्रियों की ओर से भेजे संवाद को पाकर वे उधर अपने उस सामान को सँभालने के लिए गए, जिन्हें उनके परिजनों ने उन तीर्थ-यात्रियों के साथ अम्दो से भेजा था । माँ की ओर से एक बार पुनः घर आने का संदेश पाकर वे थोड़े विचलित से होकर घर लौटने के लिए उद्यत हुए, परन्तु पुनः विचार निरस्त कर मल-डो-ल्ह-लुङ नामक विहार में ही रह गए । वहाँ पर वे लामा सोद-नम-डग्स-पा (=पुण्यकीर्ति) से विभिन्न शास्त्रों का उपदेश ग्रहण करते रहे ।

सुमतिकीर्ति की विभिन्न विहारों और विद्या केन्द्रों का भ्रमण कर वहाँ-वहाँ के विद्वानों और भिक्षुगणों के साथ शास्त्रचर्चा और धर्मचर्चा करना एक प्रकार से दिनचर्या सी बन गई थी । इसी प्रकार एक बार जब वे चे़स-थङ (=क्रीड़ा भूमि) नामक शिक्षा संस्थान में शास्त्रार्थ का उपक्रम समाप्त कर यर-लुङ क्षेत्र के नम-ग्यल-ल्ह-खङ (=विजय देवालय) विहार में पहुँचे तो शाक्य श्रीभद्र (=ख-छे-पण-छेन) की विनय परम्परा वाले जो-नङ-पा विहार के

उपाध्याय छुल-ठिम्स-रिन-छेन (=शीलरत्न) के उपाध्यायकत्व में उन्होंने उपसम्पदा ग्रहण की । उस समय उनकी अवस्था तीस वर्ष की थी ।[१]

उपसम्पन्न होने के पश्चात् वे पुनः डि-गुङ-थिल विहार में आचार्य चन-ङ-रिन-पो-छे-डग-प जङ-छुब के पास गए, जो उनके वुस-चङ्ग संभाग के प्रथम आचार्य थे । उन्होंने अब तक धारण किए गए विभिन्न गुरुओं और विद्या अर्जन करने सम्बन्धी सारी कथा आचार्य को सुनाई तो आचार्य उनकी लगन और विद्या के प्रति अनुराग को जानकर बड़े प्रसन्न हुए । तदनन्तर सुमतिकीर्ति के अनुरोध पर आचार्य ने उन्हें नरो-छोस-डुग (=षड्-नरो धर्म) के साथ-साथ स्वामी फग-मो-डुब-पा और क्यो-प-जिग-तेन-गोन-पो की कृतियों (=सुङ-बुम) का उपदेश भी दिया ।

तदुपरान्त वे किद-शोद यानी किद-छु नामक नदी की निचली उपत्यका में जाकर अब तक भिन्न-भिन्न आचार्यों से प्राप्त शास्त्र-ज्ञान की समीक्षा एवं गहन विवेचन करने लगे । फिर अभिसमयालंकार के आधार पर ईसवी सन् १३८८ में 'सुभाषित स्वर्णमाला' नामक एक ग्रन्थ की रचना आरम्भ की और दे-व-चन महाविहार में रहते समय इसे पूर्ण किया । यद्यपि शास्त्र रचना का उनका यह प्रथम प्रयास था, परन्तु उनकी पाण्डित्यपूर्ण रचना से संतुष्ट होकर तत्कालीन लोक प्रसिद्ध तग-छ़ङ-लो-च़-वा शेस-रब-रिन-छेन (=प्रज्ञारत्न) सरीखे विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी ।

धर्म और दर्शन शास्त्रों के दीर्घकाल तक अध्ययन-मनन में लगे रहने के पश्चात् अब सुमतिकीर्ति का ध्यान विशेष रूप से तंत्र अध्ययन करने की ओर गया । सूत्रों के पश्चात् तंत्र का अध्ययन करना शास्त्रसम्मत विधि भी है । इसीलिए उनका कहना था कि तंत्र-अध्ययन करने के लिए मुझे किसी से प्रेरणा लेने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि मेरी प्रारम्भिक अवस्था से ही, सम्पूर्ण ग्युद-दे अर्थात् तंत्र पिटक अध्ययन करने की प्रबल इच्छा रही है । अतः वे च़ङ्ग प्रान्त के छ़ल-पा नामक विहार में जाकर महर्षि ये-शेस-ग्यल-छ़न (ज्ञान ध्वज) से 'कालचक्र', बऊ-ब-ञेर में भट्टारक रेद-द-वा से 'सर्वतंत्रराजश्रीगुह्यसमाज-

---

१. गुश्री छ़े-फेल, मंगोल में बौद्ध धर्म का इतिहास, भोट संस्करण सारनाथ, १९६५, पृ० १०४ ।

मूलतंत्र भाष्य', आचार्य बु-स्तोन के एक प्रमुख शिष्य छोस-की-पल (=धर्मश्री), जिन्होंने आचार्य बु-स्तोन से सत्रह बार कालचक्र का उपदेश ग्रहण किया था, से कालचक्र का उपदेश और वज्रमाला आदि अभिषेक प्राप्त किया । आचार्य बु-स्तोन के सुप्रसिद्ध छोद-पोन यानी अर्चक छे-वङ्ग योगी के एक शिष्य गोन-ज़ग (=भद्रीनाथ) जो योग क्रिया के अनुष्ठानों में अति निपुर्ण था, से योग की प्रक्रियाओं को सीखा । ज-लु विहार ही में बु-स्तोन का एक दूसरा शिष्य वज्राचार्य ख्युङ-पो-ल्हस रहता था । उससे उन्होंने ग्युद-दे-ओग-मा यानी क्रिया और चर्या तन्त्रों का उपदेश और अभिषेक ग्रहण किया । आचार्य अभिषेक के अन्त में सम्बन्धित अभिषेकों का पूर्ण इतिहास और गुरु परम्परा भी अवश्यमेव बता जाते थे । जब सम्पूर्ण अभिषेक प्रदान कर चुके तो वे कहने लगे कि मैंने धर्म (=बुद्धशासन) अधिपति को सौंप दिया है, अतः अब मुझे कोई चिन्ता नहीं है । इन आचार्यों के अतिरिक्त सुमतिकीर्ति ने और भी कितने ही गुरुओं और मनीषियों से धर्मोपदेश श्रवण किया, उन सबका यहाँ उल्लेख करना संभव नहीं है । उनके उपदेशकों में स-क्या, ञिङ्-मा और क-ग्युद-पा आदि सभी निकायों के विद्वान् सम्मिलित थे । यों उन्होंने चालीस विशिष्ट आचार्यों से विशिष्ट प्रकार के उपदेश ग्रहण किए थे ।[१]

उसके पश्चात् सुमतिकीर्ति ने क्रमशः चङ्ग-रोङ (=चङ्ग नामक प्रदेश की तराई) क्षेत्र में जाकर लामा उ-म-पा प-ओ-दो-जे (=वीरवज्र) के दर्शन किए । लामा उ-म-पा जन्मजात अम्दो संभाग के रहनेवाले थे । उन्हें बचपन से ही आर्य मञ्जुघोष का साक्षात्कार सुलभ था । अतः वे उनसे एक सामान्य कल्याणमित्र की भाँति धर्मोपदेश ग्रहण करते थे और संलाप भी कर लेते थे । मञ्जुघोष उन्हें सुबह प्रत्यूष काल में एक-एक श्लोक नित्यप्रति उपदेश दे जाते थे ।

सुमतिकीर्ति ने लामा उ-म-पा के माध्यम से आर्य मञ्जुघोष से तंत्र एवं दर्शन सम्बन्धी अनेकों प्रकार के प्रश्न पुछवाये । विशेष रूप से वे माध्यमिक

---

१. गे-शे (=कल्याण मित्र) सोद-नम-ग्यल-छ़न, आचार्य चोङ-ख-पा, हिमालयी संस्कृति, स्मारिका, १९८०, शिमला, १९८१ ।

दर्शन-शास्त्र के सम्बन्ध में शंका का समाधान करवाते थे । आर्य मञ्जुघोष ने उनके सभी प्रश्नों के उत्तर दिए । लामा-उ-म-पा सुमतिकीर्ति की बाल अवस्था में ही विलक्षण शास्त्रज्ञान को देखकर आर्य मञ्जुघोष से पूछने लगे—हे ! आर्य, सुमतिकीर्ति के अतीत एवं अनागत जन्म सम्बन्धी कथा क्या है ? आर्य मञ्जुघोष ने कहा—प्राचीन काल में जब तथागत बुद्ध भगवान् इस लोक में विराजमान थे तो उस समय यह भिक्षु एक भारतीय के यहाँ ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ था । ब्राह्मण ने बालक का नाम पद्ममादन (=पद-मइ-डद-दन) रखा । बड़े होने पर एक दिन बालक की एक भिक्षु भेषधारी बोधिसत्त्व श्रद्धामति से भेंट हुई तो वह उनके शास्त्रविहित आचरण को देखकर बड़ा प्रभावित हुआ । फलतः वह बोधिसत्त्व श्रद्धामति का अनुयायी बनकर उनके साथ हो लिया ।

वह प्रतिदिन आचार्य बोधिसत्त्व से धर्मोपदेश ग्रहण करता था । एक दिन आचार्य, पद्ममादन को शाक्यमुनि बुद्ध भगवान् के पास ले गया । भगवान् के समक्ष पहुँचने पर बालक ने तत्क्षण चित्तोत्पाद उत्पन्न कर बुद्ध को एक सौ आठ मनकों से युक्त एक शुभ्र स्फटिक माला अर्पण की । उसी के पुण्य प्रभाव से आज यह भिक्षु शून्यवाद की दार्शनिक प्रक्रियाओं को समझने में सक्षम है । अनागत में यह तुषित देवलोक में उत्पन्न होकर अजित मैत्रेयनाथ से संपूर्ण महायान धर्मोपदेश ग्रहण करेगा । उस समय इस भिक्षु का नाम बोधिसत्त्व मञ्जुश्रीगर्भ (=जम-पल-ञिङ-पो) होगा ।

सातवें संवत्सर ल्हो-अश्व वर्ष यानी १३९० ई० में सुमतिकीर्ति ने लामा उ-म-पा को अपना गुरु धारण कर उनसे धर्मोपदेश श्रवण करना प्रारम्भ किया और उन्हीं के माध्यम से आर्य मञ्जुघोष से शास्त्र सम्बन्धी अपनी शंकाओं का समाधान किया था । उसके दो ही वर्ष पश्चात् यानी ईसवी १३९२ में गुरु और मञ्जुघोष के एकत्व की सात्विक भावना के फलस्वरूप उन्होंने आर्य मञ्जुघोष का साक्षात्कार कर लिया । तदनन्तर अपने गुरु लामा उ-म-पा की भांति उन्हें भी आर्य मञ्जुघोष से प्रत्यक्ष धर्मोपदेश श्रवण करने का अवसर प्राप्त होने लगा ।

लामा उ-म-पा वर्षों मध्य संभाग में निवास करने के पश्चात् अब वे कुछ समय साधना में बैठने के अभिप्राय से स्वदेश अम्दो की ओर प्रस्थान करने लगे

तो सुमतिकीर्ति उन्हें ल्ह-सा तक पहुँचाकर पुनः क्योर-मो-लुङ विहार में आकर रहने लगे । अब उनका विद्यार्थी जीवन नहीं था[१] । अतः वे दीर्घकाल तक किसी एक ही स्थान में रह लेते थे । इस बीच तिब्बत के बौद्ध धर्म में बहुत सी बुराइयाँ आ गई थीं । वे उसे पुनः उसके पूर्व स्थान पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे । अतः वे धर्म-प्रचार और विद्या-प्रसार में संलग्न हो गए । वे समझते थे कि लोगों का मिथ्या विश्वास तब तक हटाया नहीं जा सकता जब तक उनमें विद्या का प्रचार न किया जाए[२] ।

विद्यार्थी जीवन में वे जिस प्रकार शिक्षा संस्थानों (=विहारों) और विद्या केन्द्रों पर जा-जाकर गुरुजनों और शिक्षाविदों से शिक्षा-दीक्षा और धर्मोपदेश ग्रहण करते थे, उसी तरह अब वे स्वयं विनयजनों को उपदेश देने के लिए स्थान-स्थान का भ्रमण करने लगे । सुमतिकीर्ति प्रभावशाली एवं व्यक्तित्व के धनी थे । अतः लोग उनकी ओर शीघ्र आकर्षित हो जाते थे ।

एक समय की बात है कि वे ओल-ख-छोस-लुङ नामक स्थान पर पहुँचे तो वहाँ के जलवायु और नैसर्गिक सम्पदा आदि सभी को साधना के लिए अनुकूल पाया और कुछ समय के लिए वहीं पर ठहर कर 'त्रिस्कन्धधर्मपर्याय सूत्र' का पाठ करते साधना में संलग्न हो गए । कहते हैं कि उस समय उन्हें पैंतीस सुगतों, चौरासी सिद्धों और अनेक बोधिसत्त्वों का दर्शन हुआ था ।

वहाँ से आचार्य सुमतिकीर्ति 'ञल' प्रदेश होते हुए ल्हो-डग् पहुँचे । उनके मन में यह बात घर कर गई थी कि उन्होंने तिब्बत के सभी प्रसिद्ध आचार्यों

---

१. राहुल सांकृत्यायन, तिब्बत में बौद्ध धर्म, १३९५ तक चोङ-ख-पा का विद्यार्थी जीवन रहा । १३९६ ई० में अब वह अपने जीवनोद्देश्य बौद्ध धर्म में आई बुराइयों को दूर करने और विद्या प्रचार में लग गया, पृ० ५२ ।

२. ब्लू. एनल का मूल लेखक गोस्-लो-च्-वा (जन्म १३९२ ई०) अपनी एक रचना में लिखते हैं—देश और काल की वजह से इधर भिक्षु नियमों में बहुत सी शिथिलता आ गई थी । सुमतिकीर्ति ने क्योर-मो-लुङ विहार में महा-महोपाध्याय लो-सल (=स्फुटमति) से पहले स्वयं विनय कर्म (=कर्मवाचा) को भली प्रकार सीखा, तत्पश्चात् उन्होंने तपोवनों और साधना गृहों में रहते हुए भी भिक्षु प्रातिमोक्ष का सम्यक परिपालन किया । अन्त में वे अपने अनुयायियों को भी विनय पिटक के अनुसार जीवन यापन करने, चीवर और भिक्षा पात्र आदि श्रमणोचित उपकरण ग्रहण करने का आदेश देते रहे । इस प्रकार आचार्य सुमतिकीर्ति के सम्यक् प्रयास से तिब्बत में विनय का प्रकाश एक बार पुनः प्रज्वलित हुआ ।

और विद्वानों से तो उपलभ्यमान् सूत्रों और तंत्रों के उपदेश प्राप्त कर लिए हैं, अब क्यों न वे आर्यों की जन्म भूमि भारतवर्ष जाकर ओदन्तपुरी और नालन्दा आदि शिक्षा संस्थानों के आचार्य नागबोधि सरीखे विद्वानों और मनीषियों से सूत्र तथा तंत्रों का विशेषकर गुह्यसमाज तंत्र और संवर आदि प्रवर्तित उपदेशों का श्रवण करें और उन से जुड़े प्रश्नों का समाधान करें । यह बात जब उन्होंने ल्हो-डग् के डओ महाविहार के सुप्रसिद्ध महासिद्धाचार्य नम-ख-ग्यल-छ़न (=नभध्वज) से कही तो वे कहने लगे कि आप भारतवर्ष जाकर अठारह विद्याओं के वाचस्पति होकर वज्रासन (=बुद्धगया) के उपाध्याय पद भी प्राप्त कर लें, परन्तु आयु में व्यवधान के कारण आप बुद्धशासन की सेवा अधिक नहीं कर पायेंगे । अत: अच्छा यही होगा कि आप इसी हिमवन्त देश तिब्बत में ही रहकर धर्म प्रचार का काम करें । आर्य मञ्जुघोष आपके पुनीत कार्यों को सफलता प्रदान करेंगे । सुमतिकीर्ति की जिज्ञासा पर महा सिद्धाचार्य ने उन्हें दर्शनशास्त्रों के कुछ उपदेशों के अतिरिक्त क-दम-पा निकाय के 'बोधिपथक्रम' का उपदेश भी प्रदान किया । वहाँ पर वे सात मास तक ठहरे रहे ।

वहाँ से वे पुन: ञल प्रदेश लौट कर ञल-मद-सेर-छे-गङ (=स्वर्णचूर्ण टीला) में बोधिसत्त्व मञ्जुघोष की उपासना में तल्लीन हो गए । उपासना की समाप्ति के पश्चात् लगभग तीस अनुयायियों की एक टोली बनाकर वे च़-री क्षेत्र की तीर्थयात्रा पर निकल पड़े । उनकी इस यात्रा के सम्बन्ध में जर-फुन-छ़ोग्स-रब-तन གནས་ཆེན་ཙ་རི་ཀྲའི་ངོ་མཚར་སྣང་བ་པད་དཀར་ལེགས་བཤད། पृष्ठ १३, में आचार्य चोङ-ख-पा के जीवनवृत्त को उद्‌धृत करते हुए लिखते हैं कि—आचार्य सुमतिकीर्ति तंत्र प्रदेश च़-री की यात्रा में भी प्रातिमोक्षशील का अक्षरश: पालन करते थे । चूँकि च़-री प्रदेश श्रीचक्रसंवर से सम्बन्धित तांत्रिक तीर्थस्थान है । अत: ऐसे संवदेनशील तीर्थों में डाकिणियों के प्रकोप का विशेष ध्यान रखा जाता है । तांत्रिक परिभाषा में सुरा को अमृत कहा जाता है । अत: इसका निषेध या इनकार प्रतिकूल फल प्रदान करता है । यही वजह थी कि सुमतिकीर्ति के तलवे पर एक तिल्ली के गड़ जाने के कारण वे मरणोन्मुख हो गए । जब सभी प्रकार के उपचार निरर्थक सिद्ध हुए तो आचार्य को डाकिणियों के वज्ररोष का आभास

हुआ । अत: उन्होंने त्रांतिक द्रव्य 'अमृतसत्त्ववटी' (=दम-ज़स्) का सेवन किया तो वे तुरन्त निरामय हुए । मूल उद्धरण निम्न प्रकार से है—

རྗེ་ཙོང་ཁ་པ་ཆེན་པོ་གནས་བསྐོར་ལ་བྱོན་དུས་རབ་ཏུ་བྱུང་བ་ཆང་འཐུང་དུ་མི་རུང་དགོངས་ནས་མ་གསོལ་བས་ཞབས་ལ་སྐྲུག་ཚལ་ཟུག་གཤེགས་ལ་ཐུག གཞན་ཅི་བྱས་ཀྱང་མ་ཕན། གནས་ཆེན་དུ་ཆང་ལ་རྟོག་པ་བྱས་པས་ལན་པ་འདྲ་དགོངས་ཏེ་དམ་རྫས་གསོལ་བས་གདངས་སོ། ཞེས་དེ་ཉིད་ཀྱི་རྣམ་ཐར་དུ་བྱུང་བ་བཞིན་ནོ།།

आचार्य चोङ-ख-पा के प्रमुख शिष्य खस-डुब-जे द्वारा प्रणीत आचार्य की जीवनी में निम्न उल्लेख मिलता है—

དེ་ནས་དཔོན་སློབ་སུམ་ཅུ་ལྷག་ཙམ་གྱིས་རྩ་རི་མ་ཆེན་ལ་བྱོན། ཞག་འགའ་བཞུགས། རི་པ་རྣམས་ལ་མང་ཇ་གནང་སྦྱིན་དང་བཅས་པ་མཛད། རི་ཁྲོད་གཟིགས་ཤིང་བདེ་མཆོག་གི་བདག་འཇུག་ལ་སོགས་པ་མཛད། ངོ་མཚར་བའི་ལྟས་མང་དུ་བྱུང་། རྩ་རིར་ཕེབས་འགྲོན་པའི་ལ་ཁ་ནས་མར་འགྲོན་དུས། གནས་འདིར་ཡང་ནང་མཆོད་དང་བཅས་པའི་ཚོགས་འཁོར་རང་བྱེད་པ་མི་འོང་དགོངས་པ་ཞིག་ཐུགས་ལ་འཁྲུངས་པས། དེ་མ་ཁད་ནས་ཞབས་ཀྱི་ཁོལ་བུ་ཞིག་ལ་གློ་བུར་དུ་ཆེར་མ་ཟུག་པ་འདྲ་བའི་ཚ་ཟུག་དང་སྐྱུང་ཟུག་ཆེན་པོ་རང་ཡོད་ཡོད་པ་ལ་སྐྲངས་པ་ནག་པོ་ཆེན་པོ་དང་བཅས་པ་ཞིག་བྱུང་བ་ལ། སྐབས་ཤིག་ཏུ་ནང་མཆོད་དང་བཅས་པའི་བདེ་མཆོག་གི་ཚོགས་འཁོར་ཞིག་མཛད་པས། ཚོགས་འཁོར་མ་གྲོལ་བ་ནས་ཟུག་མེད་པར་དེ་མ་ཁད་དྭངས་སོ།།

उक्त अवतरण का भावार्थ निम्न प्रकार से है—

तत्पश्चात् वे लगभग तीस अनुचरों के साथ च़-री के म-छेन नामक स्थान पर पहुँचे । कुछ दिन वहीं पर रहकर तथा औपचारिक तौर पर वहाँ के पर्वतियों को चाय (-पार्टी) और उपहार प्रदान किए । उस तपोभूमि का समुचित दर्शन कर चुकने के पश्चात् उन्होंने चक्र-संवर की पूजा-अर्चना की, जिससे बड़े शुभ

लक्षण प्रकट हुए । (च्-री की यात्रा में) वहाँ से नीचे उतरते समय उनके मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि इन स्थानों पर भी (म-छेन तपोभूमि की भांति) अमृतमय पूजा करना उचित नहीं होगा । (ऐसा सोचना था कि) तत्क्षण पैर के किसी भाग में कांटा चुभने की सी पीड़ा और दर्द प्रतीत होने लगा । उनका पैर सूज कर काला हो गया । इस बीच उन्होंने चक्रसंवर की अमृतमय पूजा और उपासना की तो पूजा की परिसमाप्ति से पूर्व पैर का दर्द शान्त होकर वे निरोग हो गए । आचार्य खस्-डुब विरचित, चोड़्-ख-पा का जीवनवृत्त, वाराणसी, १९६६, पृ० ८०[१] ।

ञल में निवास करते समय वे विनयजनों को अधिकतर पंचशील, अष्टशील और प्रातिमोक्ष शील आदि शिक्षापदों का ही उपदेश करते रहे । वे कहते थे कि संबोधि के लिए उद्योग करनेवाले भिक्षुओं को सब प्रकार के अभिनिवेश का परित्याग करना चाहिए । यहाँ तक कि 'परिग्रह' आदि छोटी-छोटी शील शिक्षाओं को भी वे महत्वपूर्ण बताकर उसकी उपेक्षा न करने की सलाह देते थे । आचार्य चोड़्-ख-पा का कहना था, कि—मैंने पाचित्तिय (=ལྟུང་བྱེད་) और निस्सग्गिपाचित्तिय (=སྤང་ལྟུང་) आदि एकाध आपत्तियों (=ལྟུང་བ་) को छोड़कर पाराजिका (=ཕམ་པ་) संघादिशेष (=དགེ་འདུན་ལྷག་མ་) और प्रतिदेशना (=སོ་བཤགས་) आदि शिक्षापदों की मर्यादाओं का कभी उल्लंघन नहीं किया । पाचित्तिय आदि दोषों के भी मैं तत्काल प्रतिदेशना कर दिया करता हूँ । शील बौद्ध धर्म की मूलभूत शिक्षा होती है । इसकी परिरक्षा अत्यावश्यक है । उपासक-उपासिकाओं और भिक्षुओं को शील परिशुद्धि के लिए विशेष ध्यान देना चाहिए । इस धार्मिक अभियान के दौरान जब वे क-दम-पा निकाय के सुप्रसिद्ध र-डेंग[२] महाविहार में पहुँचे तो कुछ समय वहीं पर रहकर विश्रुत 'जङ्-छुब-लम-रिम-छेन-मो (=बृहत् बोधिपथक्रम) नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया ।

---

१. राहुल, 'तिब्बत में बौद्ध धर्म' पृ० ५३, 'चोङ्-ख-पका शिष्य मृखस्-ग्रुब (१३८५-१४३८ ई०)—जो पीछे द्गऽल्दन का तीसरा संघराज हुआ—उसके सभी शिष्यों में विद्वान थे । इसने अनेक ग्रन्थ लिखे, और अपने गुरु के काम को आगे बढ़ाया ।

२. आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान के प्रमुख भोट शिष्य डोम-तोन-पा द्वारा १०५६ ई० में स्थापित क-दम-पा निकाय का प्रथम विद्या मन्दिर ।

उस अवधि में महादुभाषिया क्यब-छोग-पल-ज़ङ (=शरणोत्तम श्रीभद्र) उनके साथ थे ।

इस प्रकार दोनों महानुभाव अहर्निश धर्म प्रचार और विद्या प्रसार में ही व्यस्त रहते थे । यद्यपि सुमतिकीर्ति ने आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान द्वारा संवर्धित विनय प्रधान परन्तु तंत्र संश्लिष्ट धर्मों का ही प्रचार किया । परन्तु वे बौद्ध धर्म की भित्ति स्वरूप भिक्षु-नियम शील-शिक्षा के अनुसार जीवनयापन करने पर विशेष जोर देते थे । उन्होंने भिक्षुओं के लिए विनय विहित चीवर का रङ्ग पीला पसन्द किया । विनय के अनुसार भिक्षु और भिक्षुणियाँ नीला, पीला और लाल कोई भी रङ्ग अपना सकते हैं । इन्होंने विशेष अवसरों पर पहनी जानेवाली टोपियों का रङ्ग भी पीला ही रखा । एतदर्थ बाद में यह पीला टोपी वाला निकाय कहलाया । इस निकाय का कार्य इतना व्यापक एवं सुनियोजित था कि बहुत ही अल्प काल में तिब्बत के तीनों संभागों वुस, चङ्ग, खम्स और अम्दो में इनके अनुयायी भिक्षुओं और वैरागियों का वर्चस्व हो गया ।

प्रारम्भ में इनका शिक्षा केन्द्र ग-दन महाविहार था, जिसे स्वयं आचार्य सुमतिकीर्ति ने ईसवी सन् १४०९ में स्थापित किया था । इस शिक्षा केन्द्र में शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करनेवाले भिक्षु छात्रों को लोग ग-दन-पा अर्थात् ग-दन विहार निवासी कहकर संबोधित किया करते थे । जो कालान्तर में ग-दन-पा शब्द का अपभ्रंश होकर गे-दन-पा और बाद में गे-दन-पा का गे-लुग्स-पा (=भिक्षुपरम्परानुयायी) नाम पड़ गया । तिब्बत के अन्य तीनों निकायों की अपेक्षा आज इसी गे-लुग्स-पा के भिक्षु और अवतारी पुरुष सर्वाधिक हैं । महामहिम दलाई लामा और पंछेन लामा इसी निकाय के धर्माधीश हैं । यूँ सुमतिकीर्ति ने स-क्या, क-ग्युद और ञिङ-मा आदि सभी निकायों के आचार्यों और विद्वानों से शिक्षा-दीक्षा ग्रहण की थी, तथापि मुख्य रूप से वे अपने आपको आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान की क-दम-पा परम्परा के अनुगत मानते हुए क-दम-सर-मा यानी नवीन क-दम-पा कहने लगे । वस्तुतः इस निकाय ने तिब्बत के बौद्ध धर्म में आई बुराइयों का नये रूप से निराकरण किया था ।

आचार्य सुमतिकीर्ति नित्यशः धर्म प्रचार एवं धार्मिक सुधार में व्यस्त रहते हुए भी सतत साहित्य सृजन करते रहते थे । उनका सुङ-बुम (=कृति) अठारह जिल्दों का एक महान संग्रह है । उनमें से कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थ निम्न प्रकार से हैं :—

**ग्रन्थों के भोट-भारतीय नाम तथा रचनाकाल**

१. སྐྱུན་སྤྲ་བ་གྲགས་པ་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་རྣམ་ཐར= आचार्य कीर्तिबोधि का जीवन चरित्र, १३८७ ई० ।
२. ལེགས་བཤད་གསེར་གྱི་ཕྲེང་བ། = सुभाषित स्वर्ण माला, १३८८ ई० ।
३. བྱང་ཆུབ་ལམ་རིམ་ཆེན་མོ། = बृहत् बोधिपथक्रम, १४०२ ई० ।
४. (क) བྱང་སའི་ཚུལ་ཁྲིམས་ལེའུ་ཡི་རྣམ་བཤད།= बोधिसत्त्वभूमि शीलपरिवर्त्त व्याख्या, १४०३ ई० ।
५. (ख) བླ་མ་ལྔ་བཅུ་པའི་རྣམ་བཤད།= पंचोत्तर व्याख्या, १४०३ ई० ।
६. (घ) རྩ་ལྟུང་བཅུ་བཞིའི་རྣམ་བཤད།= चतुर्दश आपत्ति देशना व्याख्या, १४०३ ई० ।
७. སྔགས་རིམ་ཆེན་མོ།= बृहत् मंत्रक्रम, १४०५ ई० ।
८. དྲང་ངེས་ལེགས་བཤད་སྙིང་པོ།= नैयार्थ सुभाषितहृदय, १४०७ ई० ।
९. རྩ་ཤེའི་ཊཱིཀ་ཆེན།= मूल प्रज्ञापारमिता महाटीका, १४०७ ई० ।
१०. རིམ་ལྔ་གསལ་སྒྲོན།= पंचक्रम संदीप, १४११ ई० ।
११. ལམ་རིམ་འབྲིང་བ།= मध्यम बोधिपथक्रम, १४१५ ई० ।
१२. ཟབ་ལམ་ན་རོ་ཆོས་དྲུག= न-रो-पा का गांभीर्य मार्ग धर्म,
१३. རྟེན་འབྲེལ་སྙིང་པོའི་མདོ།= प्रतीत्य समुत्पाद हृदय सूत्र,

इस प्रकार आचार्य का संपूर्ण जीवन बुद्ध, धर्म और संघ के लिए समर्पित था । वे त्रिरत्न की अनुकम्पा से उत्पन्न हुए, जीये और अवसान को प्राप्त कर गए । उन्होंने जहाँ शास्त्रों के अध्ययन के लिए कोशिश की, वहाँ भिक्षु-नियमों (=शील शिक्षाओं) के प्रचार-प्रसार के लिए भी कम काम नहीं किया । वे एक सुधारवादी आचार्य थे । उन्हें इस बात का ज्ञान था कि लोगों का मिथ्या विश्वास शिक्षा के बिना दूर नहीं किया जा सकता । उस समय शिक्षा देने की सारी व्यवस्था मठों और विहारों के हाथ में थी । विहारों के विद्वान् भिक्षुलोग ही

शिक्षक के रूप में काम करते थे । इस प्रकार उन्होंने प्रसिद्ध ग-दन महाविहार की स्थापना की और उसमें भिक्षुओं को अधिक उपासना की अपेक्षा शास्त्र-अध्ययन की ओर प्रवृत्त किया । इस प्रकार विहार में शिक्षा की सुन्दर व्यवस्था के कारण धीरे-धीरे आस-पड़ोस से ही नहीं अपितु सुदूर मंगोल और साइबेरिया तक के भिक्षु छात्र इसमें अध्ययन के लिए आने लगे । इसमें छात्रावासों की भी अच्छी व्यवस्था की गई थी । इस प्रकार १९७१ की सांस्कृतिक क्रान्ति के समय चीनी लाल रक्षकों के द्वारा इसे तहस-नहस कर देने तक इसमें तीन हजार तीन सौ भिक्षु छात्र नियमित रूप से शिक्षा पाते रहे हैं ।

ग-दन महाविहार की स्थापना के साथ-साथ आचार्य ने उसी वर्ष प्रथम भोट मास ल्ह-सा में भिक्षुओं का एक सम्मेलन आयोजित किया । जिसमें सम्मिलित होने के लिए तिब्बत के हर मठ और शिक्षा संस्थानों से प्रतिनिधि पहुँचे थे । इस प्रकार कहते हैं कि प्रथम सम्मेलन के अवसर पर ल्ह-सा की उस ऐतिहासिक बुद्ध प्रतिमा के सामने सात हजार[१] विनयधर भिक्षु एकत्रित हुए थे । उसी समय आचार्य सुमतिकीर्ति ने भोट देश की भावी स्मृद्धि एवं शकुन के लिए त्रिचीवरधारी शाक्यमुनि बुद्ध की प्रतिमा पर रत्नजटित स्वर्ण मुकुट पहना दिए थे, तभी से ल्ह-सा की विश्वविख्यात बुद्ध प्रतिमा जो-ओ (=ठाकुर) मुकुटधारी बुद्ध के रूप में ख्यात है । उस समय आचार्य की अवस्था ५३ वर्ष की थी ।

आचार्य चोङ-ख-पा के परिनिर्वाण को प्राप्त करने के पश्चात् १९ वर्ष के अन्तराल को छोड़कर यह संघ सम्मेलन प्रतिवर्ष भोट प्रथम माह ल्ह-सा में आयोजित किया जाता रहा । प्रारम्भ में सम्मेलन के अवसर पर मात्र पूजा और प्रार्थना की औपचारिकता पूरी की जाती थी । इसलिए इसका नाम ल्ह-सइ-मोन-लम-छेन-मो अर्थात् ल्ह-सा की बृहत् प्रार्थना सभा रखा गया था । यद्यपि यह शुद्ध भिक्षुओं और वैरागियों का ही सम्मेलन होता था, परन्तु गृहस्थ लोग भी इस अवसर पर बड़ी संख्या में पहुँच जाते थे । ल्ह-सा नगर की जनसंख्या १९५० के आस-पास ३५ से ४० हज़ार के बीच समझी जाती थी, परन्तु संघ सम्मेलन के

---

१. कल्याणमित्र नवाङ्ग-त्रिमा, छोस्-जुङ-लुङ-रिग-डोन-में, भोट संस्करण, सारनाथ, १९६६, 'लगभग आठ सहस्र भिक्षु इकट्ठे हुए थे' पृष्ठ १३१ ।

समय इसकी संख्या बढ़कर सत्तर-अस्सी हजार तक पहुँच जाती थी । इस अवधि में सरकार ल्ह-सा नगर का प्रशासन भिक्षु संघ को सौंप देती थी । भिक्षुओं के प्रधान-संघराज जिन्हें छ़ोग्स-छेन-जल-डो कहते थे, की देख-रेख में नगर की सारी व्यवस्था चलाई जाती थी । यह संघ सम्मेलन पहले २५ दिनों का पूर्व भाग और उसके तुरन्त बाद १२ दिनों का पश्च भाग में आयोजित होता था । धीरे-धीरे इसमें थोड़ा सुधार और कुछ नयापन आने लगा तो सम्मेलन के अवसर पर धार्मिक चर्चा और बौद्ध दर्शन सम्बन्धी शास्त्रार्थ का कार्यक्रम भी आयोजित किया जाने लगा । आगे चलकर १३वें दलाई लामा (१८७६-१९३४ ई०) ने इस संघ सम्मेलन के अवसर पर भिक्षु छात्रों की परीक्षा लेने और ल्ह-रम-पा तथा छ़ोग्स-रम-पा की उपाधि वितरण करने की परम्परा भी स्थापित की थी ।

आचार्य सुमतिकीर्ति सन् १३७६ से लेकर १४१९ तक अपने जीवन के लगभग ४३ वर्ष धर्म प्रचार एवं विद्या प्रसार में संलग्न रहे । वे विद्वान के साथ-साथ एक सुवक्ता भी थे । उनकी शिष्य मण्डली में पूर्व में अम्दो प्रान्त से लेकर पश्चिम में लद्दाख तक के विद्वान और सन्त सम्मिलित थे । इनमें ग्यल-छ़ब-दर-मा-रिन-छेन, खस-डुब-गे-लेग्स-पल-ज़ङ; तोग-दन-जम-पल-ग्य-छ़ो, ग्यल-व-गे-दुन-डुब, जम-यंस-छोस-जे और जम्स-छेन-छोस-जे प्रभृति बहुसंख्यक विद्वान और दार्शनिक पण्डित विद्यमान होते थे । इन प्रमुख शिष्यों में जङ-सेम्स-शेस-रब-ज़ङ-पो नाम के दो प्रतिभा सम्पन्न विद्वान भी थे । इनमें से एक पूर्वी छोर अम्दो का रहने वाला था और दूसरा पश्चिमी छोर लद्दाख का निवासी था । ईसवी सन् १४४४ में अम्दो वाले ने खम्स संभाग में छब-दो-जम्स-प-लिङ और लद्दाख वाले के अपने यहाँ तग-मो गोन्पा की स्थापना की थी । इस प्रकार क-दम-सर-म-पा के आचार्यों ने धर्म प्रचार और प्रसार के उद्देश्य से हिमवन्त देश तिब्बत के कोने-कोने में विहार और संघाराम स्थापित किए थे । ग्यल-व-गे-दुन-डुब (प्रथम दलाई लामा) ने १४४७ ई० में चङ्ग प्रदेश के टशी-ल्हुन-पो महाविहार का निर्माण करवाया, जबकि वुस क्षेत्र में जम-यंस-छोस-जे और जम्स-छेन-छोस-जे ने क्रमशः डस्-पुडस (१४१६ ई०) और से-र-थेग-छेन-लिङ (१४१९ ई०) महाविहार की स्थापना की थी । ये सभी विहार भोट देश के

प्रमुख शिक्षा संस्थान थे, जो चीनी आक्रमण (१९५०) के पश्चात् लाल पञ्जे के दबाव में पड़ कर अब वे अपना अस्तित्व खो चुके हैं ।

संघ सम्मेलन की पूर्ण सफलता के पश्चात् आचार्य सुमतिकीर्ति अब अधिकतर ग-दन महाविहार में ही रहकर धार्मिक गतिविधियों का संचालन करते रहते थे । कभी आमंत्रित होकर दूसरे विहारों और शिक्षा संस्थाओं में भी जाकर धर्मदेशना करते थे। वे अपने उपदेशों में बौद्ध धर्म के भित्तिस्वरूप प्रातिमोक्षशील को अच्छी तरह सीखने, पालन करने तथा प्रसार करने के लिए कहते थे[१] ।

एक समय की बात है कि आचार्य अचानक ग-दन से ल्ह-सा पहुँच कर वहाँ स्थित बुद्ध भगवान् की ऐतिहासिक प्रतिमा की बृहत् पूजा-अर्चना करने लगे । तत्पश्चात् तोद-लुङ के गर्म जल स्रोत में स्नान करने के बहाने उस ग्रामीण क्षेत्र में धर्म प्रचार करने गए । वहाँ से डस्-पुङ्स महाविहार में पहुँच कर वहाँ के कल्याणमित्रों और भिक्षु छात्रों को बृहत्बोधिपथक्रम, मध्यमकावतार और श्रीगुह्यसमाजतंत्र आदि का उपदेश दिया । तदनन्तर धर्माचार्य शाक्य-ज्ञान के निमंत्रण पर से-र-छोस्-दिङ्ग पहुँच कर वहाँ के विनयधर भिक्षुओं के साथ धार्मिक वार्तालाप के साथ-साथ उपोस्थ भी किया । वहाँ से वे दे-छेन-चे़, डग-कर और डु-जी आदि विद्यापीठों में आमंत्रित होकर गए । पुनः डस् -पुङ्स पहुँच कर वहाँ से ग-दन और इस बीच के मार्ग में वे जहाँ कहीं भी गए, सर्वत्र यही कहते रहे कि अब इन केन्द्रों पर मेरा बार-बार आना संभव नहीं है । इस प्रकार उन्हें जिस किसी विहार या शिक्षा संस्थानों से निमंत्रण मिला, वे उन सभी स्थानों में गए । जिस दिन वे डु-जी नामक विहार में पहुँचे तो उस रात घण्टी बजने की सी एक तीव्र आवाज़ से क्षेत्र गूँज उठा । लोग संशय में पड़ गए कि घण्टी मनुष्यों के द्वारा बजायी गई है अथवा यह कोई दैवी लीला है । उससे पूर्व भी जब आचार्य डस्-पुङ्स विहार में पहुँचे थे तो उस समय अचानक एक जोरदार भूकम्प का झटका महसूस किया गया था और मध्य आकाश से एक

---

१. गे-लुग्स-पा विद्वानों का मानना है कि आचार्य चो़ङ-ख-पा के अनगितन शिष्य विद्यमान थे । उनमें १४० चोटी के विद्वान थे ।

प्रकाश किरण ग-दन विहार के छत पर गिरती दिखलाई दी थी । वस्तुतः ये सभी घटनाएँ (=निमित्त) आचार्य के शीघ्र परिनिर्वाण को प्राप्त करने का संकेत थीं ।

डु-जी से प्रस्थान कर जब वे ग-दन में पहुँचे तो सर्वप्रथम यङ-प-चन मन्दिर में प्रवेश कर गए । वहाँ पर भी वे अपनी उस बात को पुनः दुहराते रहे कि अब मेरा यहाँ पर भी बारम्बार आना संभव नहीं होगा । अतः मैं आज यहाँ पर एक बृहत् पूजा-अर्चना करना चाहूँगा । उनकी इच्छा के अनुसार पूजावेदी अच्छी तरह सजायी गयी । आचार्य सुमतिकीर्ति भिक्षु संघ के मध्य बैठकर पूजा-पाठ और प्रार्थना में संलग्न हो गए । प्रार्थना की समाप्ति के पश्चात् वे अपने आश्रम में जाकर बिछे आसन पर बैठ गए और कहने लगे कि अब मैं अपनी स्वतंत्र कुटिया में पहुँचकर चित्त में प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ । यूँ आज आचार्य स्वस्थ दीख रहे थे परन्तु वे अपने आपमें शिथिल और शरीर में भारीपन अनुभव कर रहे थे, तथापि वे सदा की भांति मेरुदण्ड को सीधा करके तथा पद्मासन लगा कर समाधि में स्थिर हो गए । इस प्रकार भू-शूकर वर्ष यानी ईसवी सन् १४१९, भोट दसवाँ माह की २५वीं तिथि को त्रिविष्टप का वह प्रकाश पुञ्ज बासठ वर्ष की अल्प अवस्था में लोप होकर परिनिवृत्त हो गया ।

१५ फरवरी, १९९२
चण्डीगढ़

के० अंगरूप

आचार्य सुमतिकीर्ति चोङ-ख-पा विरचित

# बोधिपथक्रम पिण्डार्थ

## ལམ་རིམ་བསྡུས་དོན།

༄༅།། བླ་མ་འཇམ་པའི་དབྱངས་ལ་ཕྱག་འཚལ་ལོ།།

ན་མོ་གུ་རུ་མ་ཉྫུ་གྷོཥཱ་ཡ།=नमो गुरु मञ्जु घोषाय

### མཆོད་བརྗོད།།

१. ཕུན་ཚོགས་དགེ་ལེགས་བྱེ་བས་བསྒྲུན་པའི་སྐུ། |
२. མཐའ་ཡས་འགྲོ་བའི་རེ་བ་སྐོང་བའི་གསུང་། |
३. མ་ལུས་ཤེས་བྱ་ཇི་བཞིན་གཟིགས་པའི་ཐུགས། |
४. ཤཱཀྱའི་གཙོ་བོ་དེ་ལ་མགོས་ཕྱག་འཚལ། |

**मङ्गलाचरण**

१. (शास्ता जिनके) कोटिश: सम्पन्न पुण्यों से निर्मित 'काय' है ।
२. अनन्त सत्त्वों की आकांक्षाओं (को) पूर्ण करनेवाला 'वाक' (तथा)
३. सर्वज्ञेयों (=द्रव्यों) को यथा दर्शी 'चित्त' है ।
४. उस शाक्य प्रधान को मैं[१] शिर से वन्दना करता हूँ ।

१. ཟླ་མེད་སྟོན་པ་དེ་ཡི་སྲས་ཀྱི་མཆོག |
२. རྒྱལ་བའི་མཛད་པ་ཀུན་གྱི་ཁུར་བསྣམས་ནས། |
३. གྲངས་མེད་ཞིང་དུ་སྤྲུལ་པས་རྣམ་རོལ་བ། |
४. མི་ཕམ་འཇམ་པའི་དབྱངས་ལ་ཕྱག་འཚལ་ལོ། |

१. (मैं) उस अद्वितीय शास्ता के परम पुत्र (=वाक पुत्र) यानी शिष्य
४. अजित (-नाथ) और मञ्जुघोष की वन्दना करता हूँ । (जिन्होंने)

---

१. ग्रन्थकार भट्टारक चोङ-ख-पा महान उद्भव १३५७, अवसान १४१९ ईसवी सन् ।

२. जिनों (=बुद्धों) के सभी कार्यभार वहन कर,
३. असंख्य क्षेत्र में अवतारी क्रीड़ा की हैं ।

१. ཤིན་ཏུ་དཔག་པར་དཀའ་བ་རྒྱལ་བའི་ཡུམ། ।
२. ཇི་བཞིན་དགོངས་པ་འགྲེལ་མཛད་འཕགས་གྲོང་རྒྱན། ।
३. ཀླུ་སྒྲུབ་ཐོགས་མེད་ཅེས་ནི་ས་གསུམ་ན། ।
४. ཡོངས་སུ་གྲགས་པའི་ཞབས་ལ་བདག་ཕྱག་འཚལ། ।

१. अति दुर-अवगाह्य बुद्ध-मातृका (=प्रज्ञापारमितासूत्रों) के
२. यथावत् व्याख्यता (एवं) जम्बु-द्वीप के आभूषण (कहे जानेवाले आचार्य)
३. नागार्जुन (तथा) असंग (जो) त्रिभुवनों में,
४. विश्रुत हैं । (उन) के चरणों की मैं वन्दना करता हूँ ।

१. ཤིང་རྟ་ཆེན་པོ་གཉིས་ལས་ལེགས་བརྒྱུད་པའི། ।
२. ཟབ་མོའི་ལྟ་བ་རྒྱ་ཆེན་སྤྱོད་པའི་ལམ། ।
३. མ་ནོར་ཡོངས་སུ་རྫོགས་པའི་གནད་བསྡུས་པའི། ।
४. གདམས་པའི་མཛོད་འཛིན་མར་མེ་མཛད་ལ་འདུད། ।

१. (इन) दो महारथियों से सु-परांपरागत
२. गंभीर दर्शन (एवं) उदार चरिया पथों के
३. त्रुटिहीन, संपूर्ण मर्म संग्रहीता (तथा)
४. उपदेशों के कोष-धर (आचार्य) दीपंकर को (मैं) नमस्कार करता हूँ[१] ।

---

१. बौद्ध धर्म शाश्वत-दृष्टि और उच्छेद-दृष्टि इन दो अन्तों का परिहार कर मध्यमा-प्रतिपत्ति (=मार्ग) कार्य-कारण भाव का उपदेश देता है । अविद्या के प्रत्ययवश संस्कार उत्पन्न होता है और संस्कार के प्रत्ययवश विज्ञान उत्पन्न होता है, इत्यादि । इसी हेतु-फल परम्परावाद को प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं । बौद्ध धर्म के मध्यम मार्ग का यही सार है । बुद्ध भगवान् के उपदेशों में इसका बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसी को भगवान् ने गंभीरनय अथवा गंभीर दर्शन=ཟབ་མོའི་ལྟ་བ་ कहा है ।

१. རབ་འབྱམས་གསུང་རབ་ཀུན་ལ་ལྟ་བའི་མིག །
२. སྐལ་བཟང་ཐར་པར་བསྒོད་པའི་འཇུག་ངོགས་མཆོག །
३. བརྩེ་བས་བསྐྱེད་པའི་ཐབས་མཁས་མཛད་པ་ཡི། །
४. གསལ་མཛད་བཤེས་གཉེན་རྣམས་ལ་གུས་ཕྱག་འཚལ། །

१. समग्र बुद्ध वचनों को अवलोकन करने के लिए (जिनका ज्ञान) चक्षु है ।
२. सुभागियों को मुक्ति (की ओर) उद्यत (करने के लिए जो) उत्तम तटी के (समान) है । (तथा भूत-)
३. दया से प्रकम्पित (होकर जिन्होंने) उपाय-कौशल कार्यों से (धर्म स्कन्धों को) प्रकाशित किया है ।
४. (उन) कल्याण-मित्रों (=गुरुजनों) की (मैं) विनम्र वन्दना करता हूँ ।

## གདམས་ངག་གི་ཚེ་བ།

१. འཛམ་གླིང་མཁས་པ་ཡོངས་ཀྱི་གཙུག་གི་རྒྱན། །
२. སྙན་པའི་བ་དན་འགྲོ་ན་ལྷང་ངེ་བ། །
३. ཀུ་སྒྲུབ་ཐོགས་མེད་གཉིས་ལས་རིམ་བཞིན་དུ། །
ལེགས་བརྒྱུད་བྱང་ཆུབ་ལམ་གྱི་རིམ་པ་མི། །
སྐྱེ་དགའི་འདོད་དོན་མ་ལུས་སྐོང་བས་ན། །
གདམས་པ་རིན་ཆེན་དབང་གི་རྒྱལ་པོ་སྟེ། །
४. གཞུང་བཟང་སྟོང་གི་ཆུ་པོ་འདུ་བའི་ཕྱིར། །
དཔལ་ལྡན་ལེགས་པར་བཤད་པའི་རྒྱ་མཚོའང་ཡིན། །

---

आर्य मैत्रेय नाथ द्वारा उपदिष्ट "बोधिपथक्रम की परम्परा" असंग बन्धुओं (=ཐོགས་མེད་སྐུ་མཆེད་) ने संवर्द्धित किया, उदार चर्यापथ=རྒྱ་ཆེན་སྤྱོད་པའི་ལམ། कहलाता है ।

**उपदेश की महत्ता—**

१. (आचार्य नागार्जुन और असंग) जम्बूद्वीप के समस्त विद्वानों के शिरोभूषण हैं । (जिनका)

२. यशोध्वज लोक में लहरायमान है ।

३. नागार्जुन (और) असंग दोनों से क्रमशः सुसमागत बोधिपथक्रम के (उपदेश की) यह शृंखला, लोगों की मनोकामनाएँ पूरी करती हैं, अतः (यह) उपदेश इन्द्रराजरत्न=चिन्तामणि (तुल्य) है ।

४. सहस्रों सु-वाङ्मय रूपी नदियों के (इस उपदेश उदधि में) समावेश होता है, अतः (विशालता की दृष्टि से बोधिपथक्रम का यह उपदेश) श्री अन्वित सुभाषित रूपी सागर भी है । (अतः इस उपदेश के माध्यम से)—

གདམས་ངག་གི་ཁྱད་ཆོས་བཞི།

१. བསྟན་པ་ཐམས་ཅད་འགལ་མེད་རྟོགས་པ་དང་། ।

२. གསུང་རབ་མ་ལུས་གདམས་པར་འཆར་བ་དང་། ।

३. རྒྱལ་བའི་དགོངས་པ་བདེ་བླག་རྙེད་པ་དང་། ।

४. ཉེས་སྤྱོད་ཆེན་པོའི་གཡང་ས་ལས་ཀྱང་བསྲུང་། ।

**उपदेश की चार विशेषताएँ—**

१. समस्त (बुद्ध) शासन विना अतिक्रम के (अव-) बोध होता है ।

२. समस्त प्रवचन उपदेश (के रूप में ही) अवभासित होता है ।

३. जिनों (=बुद्धों) का अभिप्राय (=बुद्धभाव) सहज प्राप्त होता है । (इतना ही नहीं इससे)

४. महा दुराचार रूपी प्रपात से भी (परि-) रक्षा होती है ।

१. དེ་ཕྱིར་རྒྱ་བོད་མཁས་པའི་སྐྱེ་བོ་ནི། ।

२. སྐལ་ལྡན་དུ་མས་བསྟེན་པའི་གདམས་པ་མཆོག ।

३. སྐྱེས་བུ་གསུམ་གྱི་ལམ་གྱི་རིམ་པ་ཡིས།། ।

---

१. སྐྱེས་བུ་གསུམ=त्रिविध पुरुष—आर्य धर्म ग्रन्थों में पुरुषों (=व्यक्तियों) के अध्याशय, रुचि एवं क्षमता के अनुसार विनयजन तीन तरह के निर्धारित किए गए हैं—जैसे, अधम, मध्यम और उत्तम ।

अधम पुरुष यानी साधक जो जगत् के अनिवार्य दु:खों से उद्विग्न होकर वर्त्तमान जीवन के प्रति उनका तनिक भी मोह न हो, परन्तु परलोक में वह चक्रवर्ती राजा से लेकर देवत्व और ब्रह्मत्व तक प्राप्त करने की जिज्ञासा रखता हो । इस निमित्त वह कर्म विपाक में आस्था उत्पाद कर दस कुशल धर्मों का सम्यक् परिपालन करने, चार रूपावचर ध्यान और चार अरूपावचर ध्यान आदि लौकिक समापत्तियों को प्राप्त करने की चेष्टा करे तो ऐसे स्वार्थमना और क्षुद्र प्रवृत्ति वालों को महायान धर्म में अधम पुरुष की संज्ञा दी गई है ।

अधम पुरुष का और उपभेद नहीं होता । यह मीमांसा केवल मुमुक्षुओं के संदर्भ में ही की गई है । सर्वसामान्य लोग इस विवेचन में समाविष्ठ नहीं हैं ।

मध्यम श्रेणी का साधक जिनका मनुष्य लोक के वैभव तथा देव और ब्रह्म लोकों के दिव्य भोगों के प्रति अनासक्ति भाव हो, परन्तु दस कुशल धर्म आदि श्रमणोचित्त नियमों का सम्यक् रूपेण परिपालन करते हुए केवल अपनी निवृत्ति के लिए चेष्टावान् हो तो ऐसे स्वार्थपरायण साधकों को आर्य धर्म (=महायान) में मध्यम प्रकृति का पुरुष (=व्यक्ति) माना गया है । इसके आभ्यन्तर तीन भेद होता है—जैसे, मृदु, मध्यम और उत्कृष्ट ।

(क) जो साधक बुद्ध मार्ग (=बौद्ध धर्म) का अभ्यास करते हुए अपनी मुक्ति को लक्ष्य बनाकर दस कुशल धर्मों (=དགེ་བཅུའི་ཆོས་) का सम्यक् पालन करे, ऐसी प्रवृत्ति वालों को मध्यम श्रेणी के साधकों में तीसरे दरजे का मृदु स्वभाववाला साधक माना गया है ।

(ख) इसी प्रकार जो साधक बुद्ध मार्ग का अभ्यास करते हुए केवल अपनी मुक्ति को लक्ष्य बना कर चार आर्यसत्यों (=བདེན་པ་བཞི་) का साक्षात्कार करने की कोशिश करे तो ऐसी मनोवृत्ति वालों को मध्यम श्रेणी के साधकों में दूसरे दरजे का मध्यम स्वभाव वाला साधक माना गया है ।

(ग) जो साधक बुद्धमार्ग का अभ्यास करते हुए स्वनिवृत्ति को लक्ष्य बनाकर पुद्गल नैरात्म्य (=གང་ཟག་བདག་མེད་) और धर्म नैरात्म्य (=ཆོས་བདག་མེད་) की भावना करे तो ऐसे महामना वालों को मध्यम श्रेणी के साधकों में प्रथम दरजे का उत्कृष्ट स्वभाव वाला साधक माना गया है ।

उत्तम पुरुष महायान का साधक होता है । इनका सारा प्रयास परार्थ के लिए होता है । उन्हें अपनी मुक्ति की चिन्ता नहीं होती । सभी का उपकार करना उनका सहज स्वभाव एवं परम आशय होता है । वे अपने

४. ཡིད་རབ་མི་འཕྲོག་དཔྱོད་ལྡན་སུ་ཞིག་ཡོད། ।

१. अतएव भोट-भारत के विज्ञजनों (में),

४. (ऐसा) कौन सा धीमान (व्यक्ति) होगा ? (जिसका) चित्त

२. अनेकों अनेक भाग्यवानों (=विद्वानों) द्वारा सेवित

३. त्रिपुरुषों की (शिक्षा बोधि-) पथक्रम (नामक इस) महान उपदेश से आकृष्ट न होता होगा ।

## ཕན་ཡོན།

१. གསུང་རབ་ཀུན་གྱི་སྙིང་པོ་བསྡུ་བསྡུ་བ། ।

२. ཚུལ་འདི་ཐུན་རེ་བཏོན་དང་ཉན་པས་ཀྱང་། ।

३. དམ་ཆོས་འཆད་དང་ཐོས་པའི་ཕན་ཡོན་ཚོགས། ।

४. རླབས་ཆེན་སྡུད་པར་ངེས་པས་དེ་དོན་བསམ། ।

**अनुशंसा—**

१. (इस लघुकाय ग्रन्थ में) समस्त प्रवचनों का सार संक्षेप से संक्षेपत: (वर्णन किया गया है । अत:)

२. यह (संक्षेपकृत) विधि (द्वारा संरचित ग्रन्थ के) प्रति पहर पाठ करने से (अथवा) श्रवण करने से भी (जो)

३. पुण्य, सद्धर्मों के अभिभाषणों से और श्रवण करने से संचित होता है । (वैसा ही)

---

को परमार्थ (=དོན་དམ་) स्थिति में स्थापित करना चाहते हैं, परन्तु साथ ही साथ समस्त प्राणिजगत् को भी उसमें प्रतिष्ठित करना चाहते हैं । ऐसा परार्थ तभी संभव हो सकता है, जब साधक स्वयं पूर्ण एवं शक्ति सम्पन्न हो । सर्वशक्ति सम्पन्न तो बुद्ध ही हो सकता है । इसलिए उत्तम पुरुष महायान का साधक पहले स्वयं परमार्थ में स्थापित होना चाहते हैं ।

४. बृहत् (पुण्य) निश्चित रूप से (इसके पाठ और श्रवण करने से भी) संग्रह होगा । अतएव इस तथ्य को भलीभांति समझ लेना चाहिए ।

བཤེས་གཉེན་བསྟེན་ཚུལ།

१. དེ་ནས་འདི་ཕྱིའི་ལེགས་ཚོགས་ཇི་སྙེད་པའི། |
རྟེན་འབྲེལ་ལེགས་པར་འགྲིག་པའི་རྩ་བ་ནི། |
ལམ་སྟོན་བཤེས་གཉེན་དམ་པ་འབད་པ་ཡིས། |
२. བསམ་དང་སྦྱོར་བས་ཚུལ་བཞིན་བསྟེན་པ་རུ། |
३. མཐོང་ནས་སྲོག་གི་ཕྱིར་ཡང་མི་གཏོང་བར། |
४. བཀའ་བཞིན་བསྒྲུབ་པའི་མཆོད་པས་མཉེས་པར་བྱེད། |
རྣལ་འབྱོར་ངས་ཀྱང་ཉམས་ལེན་དེ་ལྟར་བྱས། |
ཐར་འདོད་ཁྱེད་ཀྱང་དེ་བཞིན་བསྐྱང་འཚལ་ལོ། |

**कल्याण मित्र धारण करने की विधि—**

१. तत्पश्चात् इह-पर (लोक) के कियत् (=कितने भी) सुसंभार= पुण्यकार्य विद्यमान हो । (उन सभी पुण्य कार्यों) की हेतु-प्रत्ययता का संयोजन (=मिलाने की प्रक्रिया) मूलतः मार्ग दर्शक सद्-कल्याण मित्र (=गुरुजनों द्वारा) होता है । (अतः उनका) यत्नपूर्वक,

२. संकल्प एवं प्रयोग[१] द्वारा यथा विधि (=नियमित) उपासना करते हुए, (तथा उनके गुणों का)

---

१. १. पूर्वकृत संकल्प (=བསམ་པ་) के अनुसार कार्य करने में प्रवृत्त होना प्रयोग (=སྦྱོར་བ་) कहलाता है ।
२. आर्य धर्म ग्रन्थों के अनुसार कल्याण मित्रों (=गुरुजनों) को प्रसन्न रखने के लिए साधना रूप पूजा से बढ़कर अन्य कोई पूजा वस्तु इस लोक में उपलब्ध नहीं है ।
भगवान् के जीवन के अन्तिम दिनों की एक घटना है । वह एक दिन हिरण्यवती नदी के तीर कुसीनारा के मल्लों के शालवन में गए । वह दो शाल वृक्षों के मध्य दाहिनी करवट सिंह शय्या लेट गए । उस समय वे युगल वृक्ष अकाल में ही खूब खिले हुए थे ।

३. अवलोकन करते हुए, (अन्ततः अपने) प्राण के बदले में भी परित्याग (=अवहेलना) नहीं करना चाहिए । (बल्कि)

४. आज्ञानुसार साधना (=कार्य सिद्धि) रूप पूजा द्वारा प्रसन्न करना (चाहिए) ।

साधक मैंने भी एतादृश अनुष्ठान (=नियमित अभ्यास) किया है । मुमुक्षु आप (लोग) भी एताविध परिशीलन (=सम्यक् अध्ययन) करें ।

དལ་འབྱོར་རྟེན་དཀའ།

१. དལ་བའི་རྟེན་འདི་ཡིད་བཞིན་ནོར་ལས་ལྷག ।

२. འདི་འདྲ་རྟེན་པ་ད་རེས་ཙམ་ཞིག་ཡིན། ।

३. རྟེན་དཀའ་འཇིག་སྟེ་ནམ་མཁའི་གློག་དང་འདྲ། ।

४. ཚུལ་འདི་བསམས་ནས་འཇིག་རྟེན་བྱ་བ་ཀུན། ।

སྒྲུབ་པ་འཕྲུར་བ་བཞིན་དུ་རྟོགས་གྱུར་ནས། ।

ཉིན་མཚན་ཀུན་ཏུ་སྙིང་པོ་ལེན་པ་དགོས། ।

རྣལ་འབྱོར་ངས་ཀྱང་ཉམས་ལེན་དེ་ལྟར་བྱས། ।

ཁར་འདོད་ཁྱེད་ཀྱང་དེ་བཞིན་བསྒྲུང་འཚལ་ལོ། ।

**क्षण सम्पत्ति की दुर्लभता—**

१. (अष्ट-) क्षणों (तथा दस सम्पदों) का यह आश्रय यानी मानव कलेवर चिन्तामणि से (भी अधिक) विशिष्ट है ।

---

लोग तथागत की पूजा के लिए उनके शरीर पर पुष्प बिखेरते थे । दिव्य मन्दार पुष्प और दिव्य चन्दन चूर्ण आकाश से गिरते थे । लोग उन्हें भी भगवान् के शरीर पर बिखेरते थे । उस समय भगवान् ने आयुष्मान आनन्द को संबोधित कर कहा—किन्तु आनन्द ! इससे तथागत सत्कृत-गुरुकृत, मानित-पूजित नहीं होता । आनन्द ! जो भिक्षु या भिक्षुणी, उपासक या उपासिका धर्म के मार्ग पर आरूढ़ हो धर्मानुसार आचरण करनेवाला होता है, उससे तथागत सत्कृत-गुरुकृत, मानित-पूजित होता है । ऐसा आनन्द, तुमको सीखना चाहिए ।

२. इस तरह (के मनुष्य भाव[1] की) उपलब्धि केवल इसी बार अर्थात् इसी जीवन में (संभव) हुई है । (यह मनुष्य शरीर)

---

१. मनुष्यभाव अर्थात् आठ अक्षणों (=མི་ཁོམ་པ་བརྒྱད་) से विनिर्मुक्त मानव शरीर की उपलब्धि अति दुर्लभ है । क्योंकि इस भाव में ही परम पुरुषार्थ (=སྐྱེས་བུའི་དོན་གྲུབ་) अभ्युदय (=མངོན་མཐོ་) और निःश्रेयस् (=ངེས་ལེགས་) की प्राप्ति संभव होती है । अक्षणावस्था में धर्म प्रविचय (=ཆོས་རྣམ་པར་འབྱེད་པ་) करना शाक्य नहीं होता । अतः इसे यानी इस मनुष्यभाव को चिन्तामणि से भी विशिष्ट कहा गया है ।

**आठ अक्षण**=མི་ཁོམ་པ་བརྒྱད།

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | नरकोपपत्ति | = | དམྱལ་བར་སྐྱེ་བ། |
| २. | प्रेतलोकोपपत्ति | = | ཡི་དྭགས་སུ་སྐྱེ་བ། |
| ३. | तीर्यगुपपत्ति | = | དུད་འགྲོར་སྐྱེ་བ། |
| ४. | यमलोकोपपत्ति (=मलेच्छ) | = | ཀླ་ཀློར་སྐྱེ་བ། |
| ५. | दीर्घायुष देवोपपत्ति | = | ལྷ་ཚེ་རིང་པོར་སྐྱེ་བ། |
| ६. | इन्द्रिय विकलता | = | དབང་པོ་མ་ཚང་བ། |
| ७. | प्रत्यन्त जनपदोपपत्ति | = | ཡུལ་མཐའ་འཁོབ་ཏུ་སྐྱེ་བ། |
| ८. | मिथ्या दृष्टि | = | ལྟ་བ་ལོག་པ། |

आठ अक्षणों का उल्ट अष्ट-क्षण (=དལ་བ་བརྒྱད་) कहलाता है । इस प्रकार अष्ट-क्षणों तथा दस सम्पदों से संप्रयुक्त मनुष्य भाव यानी मानव जीवन श्रेष्ठतम उद्भव माना जाता है । दस सम्पद दो भागों में विभक्त होते हैं । यथा पंच स्वसम्पद (=རང་འབྱོར་ལྔ་) तथा पंच परसम्पद (=གཞན་འབྱོར་ལྔ་) ।

**पंच स्वसम्पद** =རང་འབྱོར་ལྔ།

འཕགས་པ་ཐོགས་མེད་ཀྱི་ཞལ་ནས། མི་ཉིད་དབུས་སྐྱེས་དབང་པོ་ཚང་། ལས་མཐའ་མ་ལོག་གནས་ལ་དད།། ཅེས་གསུངས་སོ།

१. རང་ཉིད་མིར་སྐྱེ་བ་ཞིན་པ། २. ས་ཚིགས་ཆོས་ཚིགས་ཀྱི་ཡུལ་དབུས་སུ་སྐྱེ་བ། ३. དབང་པོ་ཚང་བ། ४. ལས་ཀྱི་མཐའ་མ་ལོག་པ། ५. དམ་པའི་ཆོས་ལ་དད་པ་ཡོད་པ་དང་ ལྔའོ།།

३. दुर्लभ, सुनाश्य (=वय धर्मी) आकाशीय विद्युत (प्रभा की) भाँति (क्षणभङ्गुर है । अतएव)

४. इस तथ्य (को) समझ कर (तथा) समस्त जागतिक धन्धों को ओसा हुआ तुष (की) भांति (निःसार) जान कर निशि-दिन यानी सर्व (कालों) में (सद्धर्म के) सार को ग्रहण करते रहना चाहिए ।

साधक मैंने भी एतादृश अनुष्ठान (=नियमित अभ्यास) किया है । मुमुक्षु आप (लोग) भी एताविध परिशीलन (सम्यक् अध्ययन) करें ।

## སྐྱབས་འགྲོ།

१. ཤི་ནས་ངན་འགྲོར་མི་སྐྱེའི་གདེང་མེད་ཅིང་། |
དེ་ཡི་འཇིགས་སྐྱོབ་དཀོན་མཆོག་གསུམ་དུ་ངེས། |
२. དེ་ཕྱིར་སྐྱབས་འགྲོ་ཤིན་ཏུ་བརྟན་པ་དང་། |
དེ་ཡི་བསླབ་བྱ་ཉམས་པ་མེད་པར་བྱ། |
३. དེ་ཡང་དཀར་ནག་ལས་འབྲས་ལེགས་བསམས་ནས། |
४. བླང་དོར་ཚུལ་བཞིན་བསྒྲུབ་པར་རག་ལས་སོ། |
རྣལ་འབྱོར་ངས་ཀྱང་ཉམས་ལེན་དེ་ལྟར་བྱས། |
ཐར་འདོད་ཁྱེད་ཀྱང་དེ་བཞིན་བསྐྱང་འཚལ་ལོ། |

---

**पंच परसम्पद** =གཞན་སྦྱོར་ལྔ།

འཕགས་པ་ཐོགས་མེད་ཀྱི་ཞལ་ནས– སངས་རྒྱས་བྱོན་དང་དམ་ཆོས་སྟོན། །བསྟན་པ་གནས་དང་དེ་རྗེས་འཇུག །གཞན་ཕྱིར་སྙིང་ནི་བརྩེ་བའོ།། ཅེས་གསུངས་སོ།

१. སངས་རྒྱས་འཇིག་རྟེན་དུ་འབྱོན་པ། २. དམ་པའི་ཆོས་གསུངས་པ། ३. བསྟན་པ་གནས་པ། ४. བསྟན་པ་ལ་ཞུགས་པ། ५. འཚོ་བའི་མཐུན་རྐྱེན་སྦྱིན་པའི་སྦྱིན་བདག་ཡོད་པ་བཅས་ལྔའོ།།

**शरणगमन—**

१. मरकर अर्थात् मरणोपरान्त अपाय (योनियों) में उत्पन्न नहीं होगा, (हमें ऐसा कोई) भरोसा नहीं है । (किन्तु यह बात) निश्चित है कि उस (दुर्गति) के भय (से) उबारने (की शक्ति) त्रिरत्न में (निहित) है ।

२. इसलिए (सर्वप्रथम) सुदृढ़ शरण-गमन और (तत्पश्चात्) उनकी शिक्षाओं (=शीलों) को अक्षुण (बनाए रखना) चाहिए ।

३. एतापि व्यामिश्रित कर्म-फलों (का) सुविचार कर

४. विधिवत् (पातक कर्मों का) परित्याग (और कुशल कर्मों का) परिग्रहण (करना चाहिए । क्योंकि सुगति और दुर्गति लोगों की अपनी अपनी) करतूतों पर निर्भर करती है ।

साधक मैंने भी एतादृश अनुष्ठान (=नियमित अभ्यास) किया है । मुमुक्षु आप (लोग) भी एताविध परिशीलन (=सम्यक् अध्ययन) करें ।

## མདོར་མགོ།

१. ལམ་མཆོག་བསྒྲུབ་ལ་མཚན་ཉིད་ཚང་བའི་རྟེན། |
མ་རྙེད་པར་དུ་ས་ཕྱོད་མི་འོང་བས། |
२. དེ་ཡི་མ་ཚང་མེད་པའི་རྒྱུ་ལ་བསླབ། |
३. སྒོ་གསུམ་སྡིག་ལྟུང་དྲི་མས་སྦགས་པ་འདི། |
ལྷག་པར་ལས་སྒྲིབ་སྦྱོང་བ་གནད་ཆེ་བས། |
४. རྒྱུན་དུ་སྟོབས་བཞི་ཚང་བ་བསྟེན་པ་གཅེས། |
རྣལ་འབྱོར་ངས་ཀྱང་ཉམས་ལེན་དེ་ལྟར་བྱས། |
ཐར་འདོད་ཁྱེད་ཀྱང་དེ་བཞིན་བསྐྱང་འཚལ་ལོ།

**अभ्युदय—**

१. श्रेष्ठ मार्ग यानी बुद्ध मार्ग को साधने के लिए जब तक (सर्व) लक्षणों (=अष्टक्षणों तथा दस सम्पदों) से परिपूर्ण आश्रय अर्थात् मानव शरीर प्राप्त नहीं हो जाता तब तक (बोधिपथ की साधना क्रम में) प्रगति नहीं होगी ।

२. अतएव उसके पूर्ण भाव के हेतुओं यानी पाप विरति शील शिक्षा सीखनी (चाहिए) । यह (मन)

३. त्रिद्वारों (=काय, वाक और चित्त) के पापों और आपत्तियों यानी व्रतभङ्ग के दोषों के मल से मलिन है । अतः (इन मलों की संशुद्धि के लिए) विशेष कर कर्मावरण[१] का शोधन करना (अति) महत्त्वपूर्ण है । अतः इसके लिए

४. नियमित चतुर्बल (-देशना)[२] का पूर्ण सेवन करना इष्ट होगा ।

---

१. अभिसंबोधि के दर्शन में प्रतिबन्ध आवरण कहलाता है ।

यह दो प्रकार के होते हैं । कर्मावरण (=ལས་སྒྲིབ་) और क्लेशावरण (=ཉོན་སྒྲིབ་)। त्रिसंवरों (=སྡོམ་གསུམ་) के अतिक्रम से उत्पन्न होने वाली सभी प्रकार की आपत्तियों (=ལྟུང་བ་) यानी व्रतभङ्ग के दोषों को कर्मावरण कहते हैं । यद्यपि चतुर्बल देशना (=སྡེ་བས་བཞིའི་བཤགས་པ་) से इनका विशोधन हो जाता है । तो भी संवरों यानी शीलों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । क्योंकि कहा गया है कि आपत्तिवश तथा बोधिचित्तवश उत्थान की ओर अग्रसर प्राणी संसार में दोलायमान रहने से बोधिसत्त्व भूमि बिलम्ब से प्राप्त कर पाता है ।

बोधिचर्यावतार, ४/११

इस प्रकार शील शासन की मूल भित्ति होती है । अतः शील बुद्ध शासन की आदि कल्याणता कहलाती है । सभी पापों का न करना शील है ।

**सर्वपापस्याकरणम् कुशलस्योपसम्पदा ।**
**स्वचित्त पर्यवदापनम् एतद् बुद्ध शासनम् ।।** धर्मपद-५

अर्थात्—सारे पापों का न करना, पुण्य का संचय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना, यह है बुद्ध की शिक्षा ।

शील की रक्षा चित्त से होती है । कुशल चित्तैकाग्रता समाधि है । इसलिए कहा जाता है कि समाधि चाहने वाले का शील विशुद्ध होना चाहिए । समाधि की भावना से क्लेशावरण का प्रहाण होता है ।

२. **चतुर्बल देशना** = སྡེ་བས་བཞིའི་བཤགས་པ།།

साधक मैंने भी एतादृश अनुष्ठान (=नियमित अभ्यास) किया है । मुमुक्षु आप (लोग) भी एताविध परिशीलन (=सम्यक् अध्ययन) करें ।

ངེས་འབྱུང་བསྐྱེད་དགོས་པ།

१. སྡུག་བདེན་ཉེས་དམིགས་བསམ་ལ་མ་འབད་ན། |
ཐར་པ་དོན་གཉེར་ཇི་བཞིན་མི་སྐྱེ་ཞིང་། |
२. ཀུན་འབྱུང་འཁོར་བའི་འཇུག་རིམ་མ་བསམ་ན། |
འཁོར་བའི་རྩ་བ་གཅོད་ཚུལ་མི་ཤེས་པས། |
३. སྲིད་ལས་ངེས་འབྱུང་སྐྱོ་ཤས་བསྟེན་པ་དང་། |
४. འཁོར་བར་གང་གིས་བཅིངས་པ་ཤེས་པ་གཅེས། |
རྣལ་འབྱོར་ངས་ཀྱང་ཉམས་ལེན་དེ་ལྟར་བྱས། |
ཐར་འདོད་ཁྱོད་ཀྱང་དེ་བཞིན་བསྐྱང་འཚལ་ལོ། |

**निःसरण उत्पन्न करने की आवश्यकता—**

क—སྡུག་བསྔལ་འཕགས་པའི་བདེན་པ=दुःख आर्यसत्य

१. སྡུག་བདེན་ཉེས་དམིགས་བསམ་ལ་མ་འབད་ན། |
ཐར་པ་དོན་གཉེར་ཇི་བཞིན་མི་སྐྱེ་ཞིང་། |

दुःख सत्य (के) उपालम्भों (=दोषों) को—जैसे, यह जो जन्म भी दुःख है । जरा, व्याधि, मरण, अप्रिय का संयोग तथा प्रिय का वियोग इत्यादि (दुःखों को) समझने (का) प्रयास न किया तो,

---

རྣམ་པར་སུན་འབྱིན་པ་ཀུན་ཏུ་སྤྱོད་པའི་སྟོབས=दूषण समुदाचार बल ।

གཉེན་པོ་ཀུན་ཏུ་སྤྱོད་པའི་སྟོབས=प्रतिपक्ष समुदाचार बल ।

ཉེས་པ་ལས་སླར་ལྡོག་པའི་སྟོབས=दोष प्रतिवाहन बल ।

རྟེན་གྱི་སྟོབས=आश्रय बल ।

मुक्ति (प्राप्त करने के लिए मन में कभी भी) यथार्थ जिज्ञासा उत्पन्न नहीं होगी[१] ।

ख—ཀུན་འབྱུང་འཕགས་པའི་བདེན་པ་दुःख समुदय आर्य सत्य

२. ཀུན་འབྱུང་འགོར་བའི་འཇུག་རིམ་མ་བསམ་ན། ।
འགོར་བའི་རྩ་བ་གཅོད་ཚུལ་མི་ཤེས་པས། ।

(दुःख—) समुदाय अर्थात् दुःख का कारण (यह जो) भव (=अनागत जीवन, में फिर-फिर जन्म लेने वाली—जैसे, काम तृष्णा भव तृष्णा तथा विभवतृष्णा आदि में चित्त) प्रवृत्त होने का उपक्रम है । (यदि उसका ठीक-ठीक) निरूपण न किया तो,

---

१. भगवान् कहते हैं—भिक्षुओ ! (१) यह दुःख आर्य सत्य है । जन्म भी दुःख है । जरा (=बुढ़ापा) भी दुःख है । व्याधि (=बीमार होना) भी दुःख है । मरण (=मृत्यु) भी दुःख है । अप्रिय का संयोग भी दुःख है । प्रियों का वियोग भी दुःख है । इच्छित वस्तु का न मिलना भी दुःख है । संक्षेप में पाँचों उपादान स्कन्ध—जैसे, रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान भी दुःख हैं ।

भिक्षुओ ! (२) यह दुःख समुदय (=दुःख का कारण) आर्य सत्य है । यह जो तृष्णा (=སྡིག་པ་)* है— फिर जन्म लेने की, खुश होने की, प्रीति और राग सहित उत्पन्न हुए स्थानों में प्रसन्न होने की-जैसे, काम तृष्णा (=འདོད་སྡིག་), भव तृष्णा (=སྲིད་སྡིག་) तथा विभव तृष्णा (= འཇིག་སྡིག་) ।

भिक्षुओ ! (३) यह दुःख निरोध आर्य सत्य है । जो उसी तृष्णा का सर्वथा विराग होना है । निरोध है । प्रतिनिस्सर्ग है, लीन न होना है ।

भिक्षुओ ! (४) यह दुःख निरोध गामिनी प्रतिपद् आर्य सत्य है—जैसे, सम्यक् दृष्टि (=ཡང་དག་པའི་ལྟ་བ་), सम्यक् संकल्प (=རྟོག་པ་), सम्यक् वचन (=ངག་), सम्यक् कर्मान्त (=ལས་མཐའ་), सम्यक् आजीव (= འཚོ་བ་), सम्यक्व्यायाम (=རྩོལ་བ་), सम्यक् स्मृति (=དྲན་པ་) तथा सम्यक् समाधि (=ཏིང་ངེ་འཛིན་) ।

त्रिविध तृष्णा (= སྡིག་པ་གསུམ།)

(१) काम तृष्णा, (२) भव तृष्णा तथा (३) विभव तृष्णा । रूपादि पाँच काम गुणों (= འདོད་པའི་ཡོན་ཏན་ལྔ་) के प्रति राग का समुदाचार (=नीयत) तृष्णा है । काम आस्वादनवश, उसकी आस्वादन प्रवृत्ति काम तृष्णा कहलाती है। जब यह शाश्वत-दृष्टि-सहगत राग हो, तब वह भव तृष्णा है और यदि उच्छेद-दृष्टि-सहगत राग हो तो विभव तृष्णा कहलाती है ।)

भवमूल (तृष्णा) के उच्छेद करने की विधि नहीं जानी जा सकती, अतः

ग—འགོག་པ་འཕགས་པའི་བདེན་པ=दु:ख निरोध आर्यसत्य

३. སྲིད་ལས་ངེས་འབྱུང་སྐྱོ་ཤས་བསྟེན་པ་དང་། |

(उस भव मूल तृष्णा से प्रादुर्भूत इस) संसार से नि:सरण (=सर्वथा विराग की भावना एवं) उद्वेग (=चित्त विक्षोभ का) अभ्यास तथा—

घ—ལམ་འཕགས་པའི་བདེན་པ=दु:ख निरोध गामिनी आर्यसत्य

४. འཁོར་བར་གང་གིས་བཅིངས་པ་ཤེས་པ་གཅེས། |

भव (=अनागत जीवन) में किस (प्रत्यय के होने) से आबद्ध होता है । इसे दु:ख निरोध गामिनी प्रतिपद् आर्य सत्य (=प्रज्ञा) के द्वारा जानना इष्ट है ।

साधक मैंने भी एतादृश अनुष्ठान (=नियमित अभ्यास) किया है । मुमुक्षु आप (लोग) भी एताविध परिशीलन (सम्यक् अध्ययन) करें ।

## སེམས་བསྐྱེད།

१. སེམས་བསྐྱེད་,ཐེག་ཆེན་ལམ་གྱི་གཞུང་ཤིང་སྟེ། |

२. ཐབས་ཆེན་སྤྱོད་པ་རྣམས་ཀྱི་གཞི་དང་རྟེན། |

३. ཚོགས་གཉིས་ཀུན་ལ་གསེར་འགྱུར་རྩི་ལྟ་བུ། |

४. རབ་འབྱམས་དགེ་ཚོགས་སྡུད་པའི་བསོད་ནམས་གཏེར། |
དེ་ལྟར་ཤེས་ནས་རྒྱལ་སྲས་དཔའ་བོ་རྣམས། |
རིན་ཆེན་སེམས་མཆོག་ཐུགས་དམ་མཐིལ་དུ་འཛིན། |

རྣལ་འབྱོར་ངས་ཀྱང་ཉམས་ལེན་དེ་ལྟར་བྱས། |
ཐར་འདོད་ཁྱེད་ཀྱང་དེ་བཞིན་བསྐྱང་འཚལ་ལོ། |

**चित्तोत्पाद—**

'चित्तोत्पाद'[१] (१) महायान मार्ग का मध्य-स्तंभ है ।

२. बृहत् (बोधि-) चर्यों का आधार एवं आश्रय है ।

३. द्विसंभारों (पुण्य संभार और ज्ञान संभारों) के लिए (यह) सुवर्णभा तुल्य है, (और यह चित्तोत्पाद)

४. विस्तृत कुशल संभारों के संग्रह के लिए पुण्य निधि है ।

इस प्रकार वीर जिनपुत्रों ने (चित्तोत्पाद की महत्ता को समझ कर (इस) महानतम चित्तरत्न को (अपने) नैतिक धरातल में धारण किया है ।

साधक मैंने भी एतादृश अनुष्ठान (=नियमित अभ्यास) किया है । मुमुक्षु आप (लोग) भी एताविध परिशीलन (=सम्यक् अध्ययन) करें ।

སྦྱིན་པའི་ཕར་ཕྱིན།

१. སྦྱིན་པ་, འགྲོ་བའི་རེ་སྐོང་ཡིད་བཞིན་ནོར། ।

२. སེར་སྣའི་མདུད་པ་གཅོད་པའི་མཚོན་ཆ་མཆོག ।

---

१. यह यथार्थ है कि चित्तोत्पाद के बिना कोई व्यक्ति महायान का अनुगामी नहीं होता । यहाँ चित्तोत्पाद का अभिप्रेत अर्थ बोधिचित्तोत्पाद से है । यह दो प्रकार का होता है । बोधिप्रणिधिचित्त तथा बोधि प्रस्थान चित्त । चित्तोत्पाद का मूल महाकरुणा है । संसार के आर्त्त प्राणियों को देखकर साधक का मन जब करुणा से द्रवीभूत हो जाता है और तब कामना करने लगता है कि मैं इन दु:खार्दित जीवों के परित्राण के लिए बुद्ध होऊँ । तब बोधिप्रणिधिचित्त का उत्पाद होता है । यह चित्तोत्पाद की पूर्व अवस्था का नाम है तथा महायान का पथिक होने की कामना प्रकट करना है । अभी उसने मार्ग पर प्रस्थान नहीं किया है । अत: वह अभी पूर्ण महायानी नहीं है । साधक जब बोधिचित्त संवर ग्रहण कर पारमिताओं का सतत अभ्यास करते हुए बोधिपथ पर अग्रसर होता है, तब बोधि प्रस्थान चित्त का उत्पाद होता है । चूँकि यह चित्त पारमिताओं से सम्पुष्ट होता है । अत: निरन्तर पुण्य देने वाला होता है । आचार्य शान्तिदेव कहते हैं—

**बोधिप्रणिधिचित्तस्य संसारेऽपि फलं महत् ।**
**नानवविच्छिन्नपुण्यत्वं यथा प्रस्थानचेतसः ।। १/१७**

अर्थात्, बोधिप्रणिधिचित्त का भी संसार में महान् फल होता है । किन्तु बोधिप्रस्थान चित्त की भाँति इसमें पुण्य की निरन्तरता नहीं रहती । बोधिचर्यावतार, प्रथम परिच्छेद, १७वां श्लोक ।

३. མ་ཞུམ་སྙིང་སྟོབས་བསྐྱེད་པའི་རྒྱལ་སྲས་སྤྱོད། |
४. སྙན་པའི་གྲགས་པ་ཕྱོགས་བཅུར་སྒྲོགས་པའི་གཞི། |
དེ་ལྟར་ཤེས་ནས་ལུས་དང་ལོངས་སྤྱོད་དགེ |
ཡོངས་སུ་གཏོང་བའི་ལམ་བཟང་མཁས་པས་བསྟེན། |
རྣལ་འབྱོར་ངས་ཀྱང་ཉམས་ལེན་དེ་ལྟར་བྱས། |
ཐར་འདོད་ཁྱེད་ཀྱང་དེ་བཞིན་བསྐྱང་འཚལ་ལོ། |

**दान पारमिता—**

'दान'[१], (१) प्राणियों की आकांक्षाओं की पूरणी चिन्तामणि है ।

२. मत्सर्य रूप ग्रन्थि काटने का परम शस्त्र है ।

३. संकोचहीन आत्मबल उत्पाद करने के जिनपुत्रों की चर्या है, (और यह दान)

४. दसों दिशाओं में सुयश फैलाने का आधार है ।

इस प्रकार विज्ञजनों ने (दान की महत्ता को) समझ कर (अपने) शरीर, भोगों तथा (त्रैकालिक) पुण्यों को सर्व सत्त्वार्थ उत्सर्ग करने के सन्मार्ग का सेवन किया है ।

साधक मैंने भी एतादृश अनुष्ठान (=नियमित अभ्यास) किया है । मुमुक्षु आप (लोग) भी एताविध परिशीलन (=सम्यक् अध्ययन) करें ।

---

१. बोधिसत्त्व चित्तोत्पाद के पश्चात् षट्-पारमिताओं का अभ्यास करता है । पारमिताओं में दान पारमिता प्रथम है । भोग्य वस्तुओं को पुण्यार्थ प्रदान कर देना दान कहलाता है । परन्तु बोधिसत्त्वओं का दान अन्यों से किञ्चित् भिन्न होता है । सर्व भोग्य वस्तुओं को अनाथ सत्त्वओं के लिए दान कर देना और उस दान के फल को भी सत्त्वार्थ उत्सर्ग कर देना बोधिसत्त्वओं का दान या चर्या कहलाती है ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व धन-सम्पत्ति तो क्या अपना शरीर, अतीतानागत और वर्त्तमान काल के कुशल-मूल (=पुण्य) आदि सब कुछ सर्व सत्त्वार्थ दान करता है । वह जिसको जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, वह उसे बिना मनोविकार के दे देता है ।

## ཚུལ་ཁྲིམས་ཀྱི་ཕར་ཕྱིན།

१. ཚུལ་ཁྲིམས་,ཉེས་སྤྱོད་དྲི་མ་འཁྲུད་པའི་ཆུ། |
२. ཉོན་མོངས་ཚ་གདུང་སེལ་བའི་ཟླ་བའི་འོད། |
३. སྐྱེ་དགུའི་དབུས་ན་ལྷུན་པོ་ལྟ་བུར་བརྗིད། |
४. སྟོབས་ཀྱིས་བསྡིགས་པ་མེད་པར་འགྲོ་ཀུན་འདུད། |
དེ་ལྟར་ཤེས་ནས་ཡང་དག་བླངས་པའི་ཁྲིམས། |
དམ་པ་རྣམས་ཀྱིས་མིག་བཞིན་བསྲུང་བར་མཛད། |
རྣལ་འབྱོར་ངས་ཀྱང་ཉམས་ལེན་དེ་ལྟར་བྱས། |
ཐར་འདོད་ཁྱེད་ཀྱང་དེ་བཞིན་བསྐྱང་འཚལ་ལོ། |

**शील पारमिता—**

'शील'[१], (१) दुराचार रूपी मैल धोने का नीर है ।

२. क्लेश रूपी संताप हरने का चन्द्र-किरण है । (शीलवान् )

३. जनता के मध्य मेरु (=पर्वत की) भाँति प्रभावशाली होता है, (और शीलवानों द्वारा)

४. बलात् ताड़े बिना भी सभी लोग (उनके प्रति) नत (-मस्तक) हो जाते हैं ।

---

१. शील का अर्थ सदाचार है । शीलवान् पुरुष प्राणी हिंसा आदि सभी तरह के गर्हित कार्यों से अपने को अलग-थलग रखता है । बौद्ध उपासक-उपासिकाओं के लिए पंच या पंचांग शील और अष्टांग शील (=उपवास्थ), श्रमणेर और श्रमणेरी के लिए दस शील तथा भिक्षु और भिक्षुणियों के लिए प्रातिमोक्ष शील (=उपसम्पदा) का प्रावधान होता है । शील से अपाय (=दुर्गति) का अतिक्रमण होता है ।

एक बार भगवान् ने पाटली ग्रामवासी उपासक-उपासिकाओं को संबोधित कर कहा—गृहपतियों ! शीलवानों के लिए सदाचार के कारण पाँच सुपरिणाम होते हैं । कौन से पाँच ? शीलवान् पाप विषय में संलग्न न हो, अप्रमाद रहकर (इसी जन्म में) बड़ी भोगराशि प्राप्त करता है । यह शील का प्रथम सुपरिणाम है और फिर शीलवान् का मंगल-यश सर्वत्र फैलता है । यह शील का दूसरा सुपरिणाम है । शीलवान् जिस किसी सभा में जाता है, मूक न हो विशारद बनकर जाता है । यह शील का तीसरा सुपरिणाम है । शील सम्पत्ति से युक्त पुरुष मरते समय स्मृति को सम्मुख रख मृत्यु को प्राप्त करता है । यह शील का चौथा सुपरिणाम है । और फिर गृहपतियो ! शीलवान् सदाचार के कारण काया छोड़ मरने के बाद स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है । यह शील का पाँचवाँ सुपरिणाम है ।

इस प्रकार सत्पुरुषों ने (शील के गुणों को) समझकर सुगृहीत शील की (अपने) नेत्रों की भांति रक्षा की हैं ।

साधक मैंने भी एतादृश अनुष्ठान (=नियमित अभ्यास) किया है । मुमुक्षु आप (लोग) भी एताविध परिशीलन (=सम्यक् अध्ययन) करें ।

## བཟོད་པའི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ།

१. བཟོད་པ་,སྐྱབས་ལྡན་རྣམས་ལ་རྒྱན་གྱི་མཆོག ।
२. ཉོན་མོངས་གདུང་བའི་དཀའ་ཐུབ་ཀུན་གྱི་ཕུལ། ।
३. ཞེ་སྡང་ལག་འགྲོའི་དགྲ་ལ་ནམ་མཁའ་ལྡིང་། ।
४. ཚིག་རྩུབ་མཚོན་ལ་སྲ་བའི་གོ་ཆ་ཡིན། ।
དེ་ལྟར་ཤེས་ནས་བཟོད་མཆོག་གོ་ཆ་ལ། ।
རྣམ་པ་སྣ་ཚོགས་ཚུལ་གྱིས་གོམས་པར་མཛད། ।
རྣལ་འབྱོར་ངས་ཀྱང་ཉམས་ལེན་དེ་ལྟར་བྱས། ।
ཐར་འདོད་ཁྱེད་ཀྱང་དེ་བཞིན་བསྐྱང་འཚལ་ལོ། ।

**क्षांति पारमिता—**

'क्षांति'[१], (१) बलवानों के लिए उत्तम आभूषण के (समान) है ।

---

१. दूसरों के द्वारा सताये जाने पर भी क्षुब्ध न होना क्षान्ति कहलाता है । कहा गया है कि क्षान्ति के समान दूसरा कोई तप नहीं है । द्वेष के समान दूसरा पाप नहीं है । क्योंकि द्वेष का उद्देश्य वध करना होता है । अतः द्वेष के दोषों को समझकर द्वेष के विपक्ष क्षान्ति का उत्पाद करना चाहिए ।

ཞེ་སྡང་ལྟ་བུའི་སྡིག་པ་མེད། །བཟོད་པ་ལྟ་བུའི་དཀའ་ཐུབ་མེད། །
དེ་བས་བཟོད་པ་ནན་ཏན་དུ། །སྣ་ཚོགས་ཚུལ་གྱིས་བསྒོམ་པར་བྱ། །

जिस प्रकार अग्निकण तृणराशि को दग्ध करता है, उसी प्रकार द्वेष सहस्रों कल्प के उपार्जित कर्म को तथा बुद्ध पूजा को नष्ट करता है । आचार्य शान्तिदेव कहते हैं:—

**सर्वमेतत्सुचरितं दानं सुगतपूजनम्** ।

२. क्लेशों को तपाने के लिए सर्वोत्तम तप है ।

३. द्वेष (रूपी सर्प के लिए) भुजङ्ग-शत्रु गरुड़ (-वत्) है । (और यह क्षान्ति)

४. पारुष्य-वचनास्त्र (के घात को सहने) के लिए दृढ़ कवच है ।

ऐसा समझकर (विज्ञजनों ने) कवच रूपी उत्तम क्षान्ति का विविध रूप से अभ्यास किया है ।

साधक मैंने भी एतादृश अनुष्ठान (=नियमित अभ्यास) किया है । मुमुक्षु आप (लोग) भी एताविध परिशीलन (=सम्यक् अध्ययन) करें ।

## བརྩོན་འགྲུས་ཀྱི་ཕར་ཕྱིན།

१. མི་ལྡོག་བརྟན་པའི་བརྩོན་འགྲུས་གོ་བགོས་ན། |
२. ལུང་རྟོགས་ཡོན་ཏན་ཡར་ངོའི་ཟླ་བཞིན་འཕེལ། |
३. སྤྱོད་ལམ་ཐམས་ཅད་དོན་དང་ལྡན་པར་འགྱུར། |
४. གང་བརྩམས་ལས་ཀྱི་མཐའ་རྣམས་ཡིད་བཞིན་འགྲུབ། |
དེ་ལྟར་ཤེས་ནས་ལེ་ལོ་ཀུན་སེལ་བའི། |
རླབས་ཆེན་བརྩོན་འགྲུས་རྒྱལ་སྲས་རྣམས་ཀྱིས་བརྩམས། |

---

**कृतं कल्प सहस्त्रैर्यत्प्रतिघः प्रतिहन्ति तत्** ।।६/१

अर्थात् सुचरित, दान तथा (बुद्ध पूजा आदि सभी पुण्य जो सहस्त्रों कल्पों से उपार्जित किया गया है, वह सभी क्षण मात्र के द्वेष (=क्रोध) से नष्ट हो जाता है ।

བསྐལ་པ་སྟོང་དུ་བསགས་པ་ཡི། །སྦྱིན་དང་བདེ་གཤེགས་མཆོད་ལ་སོགས། །ལེགས་སྤྱད་གང་ཡིན་དེ་ཀུན་ཀྱང་། །ཁོང་ཁྲོ་གཅིག་གིས་འཇོམས་པར་བྱེད། །

द्वेष और दौर्मनस्य से किसी का आत्म-हित तो होता नहीं, अतः वृथा द्वेष करने से क्या लाभ ? इस प्रकार विज्ञजन द्वेष के दोषों को जानकर उसके प्रतिपक्ष क्षान्ति का विविध रूप से अभ्यास करते हैं ।

རྣལ་འབྱོར་ངས་ཀྱང་ཉམས་ལེན་དེ་ལྟར་བྱས། ।
ཐར་འདོད་ཁྱིད་ཀྱང་བདེ་བཞིན་བསྒྲུབ་འཚལ་ལོ། ।

**वीर्य पारमिता—**

१. 'वीर्य'[१], (का) अनिवर्तन (एवं) दृढ़ कवच पहन लें तो,
२. आगम (और) अधिगम (का) गुण शुक्ल-पक्ष के चन्द्रमा की भाँति (उत्तरोत्तर) बढ़ने लगता है ।
३. सभी इर्या-पथ अर्थवान हो जाते हैं । (इस प्रकार वीर्यवान्)
४. जो कुछ (भी) कार्य आरम्भ करता है, (उस) का अन्त यानी परिणाम इच्छनुसार सिद्ध हो जाता है ।

इस प्रकार जिनसुतों (=बोधिसत्त्वों) ने (वीर्य के गुणों को) समझकर सर्वालस्य निवारक बृहत् वीर्य (का) समारम्भ किया है ।

साधक मैंने भी एतादृश अनुष्ठान (=नियमित अभ्यास) किया है । मुमुक्ष आप (लोग) भी एतादृश परिशीलन (=सम्यक् अध्ययन) करें ।

---

१. १. आचार्य क्षान्ति देव लिखते हैं कि "कुशल कर्म में उत्साह का होना ही वीर्य का होना है" । इसका विपक्ष आलस्य है । आलस्यवान् आत्मार्थ भी पूरा नहीं कर सकते तो दूसरों का हित सम्पादन करना तो क्या कहना ? कहते हैं कि किसी को संसार-दुःख का तीव्र अनुभव नहीं हो जाता, उसके कुशल कर्म में मनोवृत्ति नहीं होती । ऐसे लोग वीर्य के अभाव में बुद्धत्व भी प्राप्त नहीं कर पाते हैं ।

२. आचार्य वसुबन्धु ने कहा है कि सद्धर्म दो भागों में विभक्त है । यथा— आगम (=ལུང་) और अधिगम (=རྟོགས་པ་) कोश-८/३९

क. त्रिपिटक आगम है । सूत्र, विनय और अभिधर्म उसके तीन विभाग हैं ।
ख. अधिगम उन धर्मों की संज्ञा है, जिनके आचार में गृहीत करने और साक्षात्कार से बोधि की प्राप्ति होती है ।

३. साधारणतया इर्या-पथ चार (=སྤྱོད་ལམ་རྣམ་པ་བཞི་) प्रकार के होते हैं । यथा— (१) गमन (=འགྲོ་), (२) स्थान (=འཚས་), (३) निषद्य (=འདུག་) और (४) शयन (=ཉལ་) ।

भगवान् कहते हैं— भिक्षुओ ! भिक्षु जाते हुए 'जाता हूँ'— जानता है । बैठे हुए 'बैठा हूँ'— जानता है । सोये हुए 'सोया हूँ'— जानता है । जैसे-जैसे उनकी काय अवस्थित होती है, वैसे ही उसे जानता है । इस प्रकार भिक्षु कायानुपश्यी (=ལུས་ངན་པ་ཉེ་བར་བཞག་པ་) हो विहरता है ।

བསམ་གཏན་གྱི་ཕར་ཕྱིན།

१. བསམ་གཏན་,སེམས་ལ་དབང་བསྒྱུར་རྒྱལ་པོ་སྟེ། |
२. བཞག་ན་གཡོ་མེད་རི་ཡི་དབང་པོ་བཞིན། |
३. བཏང་ན་དགེ་བའི་དམིགས་པ་ཀུན་ལ་འཇུག |
४. ལུས་སེམས་ལས་སུ་རུང་བའི་བདེ་ཆེན་འདྲེན། |
དེ་ལྟར་ཤེས་ནས་རྣལ་འབྱོར་དབང་པོ་རྣམས། |
རྣམ་གཡེང་དགྲ་འཇོམས་ཏིང་འཛིན་རྒྱུན་དུ་བསྟེན། |
རྣལ་འབྱོར་ངས་ཀྱང་ཉམས་ལེན་དེ་ལྟར་བྱས། |
ཐར་འདོད་ཁྱེད་ཀྱང་དེ་བཞིན་བསྐྱང་འཚང་ལོ། |

**ध्यान पारमिता—**

'ध्यान'[१], (१) चित्त को वश में करनेवाला शासक है । (यह आलम्बन में)

२. स्थिर करें तो गिरीन्द्र (=मेरु पर्वत) सा अचल रहता है, (और इसे भावना के क्षणों में ढीला)

३. छोड़ दें तो सभी कुशल आलम्बनों में प्रवृत्त हो जाता है । (क्योंकि समाहित चित्त होने के कारण इसकी विक्षेप वृत्ति नहीं होती । इस प्रकार यह ध्यान),

४. काय-चित्त कर्मण्यता का महासुख संचारित करता है ।

इस प्रकार योगीन्द्र (=साधकों ने) ध्यान की (उपयोगिता को) समझकर विक्षेप रूपी अरि हत कर समाधि का सतत सेवन किया है ।

---

१. कुशलचित्त की एकाग्रता के लिए प्रयत्न करना ध्यान (=समाधि) कहलाता है । क्योंकि विक्षिप्त-चित्त लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थ होता है । इसलिए योगी लोक-संसर्ग से विरत रहने का प्रयत्न करता है । क्योंकि विवर्जन से विक्षेप (=རྣམ་གཡེང་) उत्पन्न नहीं होता और चित्त आलम्बन में प्रतिष्ठित होता है । चित्त की एकाग्रता यद्यपि लौकिक समाधि होती है, परन्तु यह कुशल-मूल (=དགེ་རྩ་) होने के कारण प्रज्ञा का प्रादुर्भाव करती है ।

साधक मैंने भी एतादृश अनुष्ठान (=नियमित अभ्यास) किया है । मुमुक्षु आप (लोग) भी एताविध परिशीलन (=सम्यक् अध्ययन) करें ।

ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕར་ཕྱིན།

१. ཤེས་རབ་,ཟབ་མོ་དེ་ཉིད་བལྟ་བའི་མིག །
२. སྲིད་པའི་རྩ་བ་དྲུངས་ནས་འབྱིན་པའི་ལམ། །
३. གསུང་རབ་ཀུན་ལས་བསྔགས་པའི་ཡོན་ཏན་གཏེར། །
४. གཏི་མུག་མུན་སེལ་སྒྲོན་མའི་མཆོག་ཏུ་གྲགས། །
དེ་ལྟར་ཤེས་ནས་ཐར་འདོད་མཁས་པ་ཡིས། །
ལམ་དེ་འབད་པ་དུ་མས་བསྐྱེད་པར་མཛད། །
རྣལ་འབྱོར་ངས་ཀྱང་ཉམས་ལེན་དེ་ལྟར་བྱས། །
ཐར་འདོད་ཁྱེད་ཀྱང་དེ་བཞིན་བསྐྱང་འཚལ་ལོ། །

**प्रज्ञापारमिता—**

'प्रज्ञा'[१], (१) गम्भीर तथता (=शून्यता) देखने का चक्षु है ।

२. भवमूल यानी तृष्णा के उन्मूलन करने वाला मार्ग (=अन्वेषण) है ।

---

१. चित्त की एकाग्रता से प्रज्ञा का प्रादुर्भाव होता है । यह चित्त का सर्वोपरि विकास माना जाता है । योगी जब प्रज्ञा से देखता है कि सब संसार अनित्य है, सब धर्म दुःखमय हैं तथा अनात्मा है । केवल व्यवहार दशा में इनकी सत्यता प्रतिष्ठित है, तब अविद्या की निवृत्ति होती है । अविद्या के निरोध से संस्कार का निरोध होता है, संस्कार के निरोध से विज्ञान का । इस प्रकार पूर्व कारणभूत के निरोध से उत्तरोत्तर कार्यभूत का निरोध होता है । अन्त में दुःख का निरोध होता है । इस प्रकार प्रज्ञा से सर्वभव का समातिक्रम (=निरोध) होता है ।

सञ्चय गाथा =འཕགས་པ་སྡུད་པ་ में कहा गया है—

ཆོས་རྣམས་རང་བཞིན་མེད་པར་ཡོངས་སུ་ཤེས་གྱུར་པ། །
འདི་ནི་ཤེས་རབ་ཕ་རོལ་ཕྱིན་མཆོག་སྤྱོད་པ་ཡིན། །

३. सभी (प्रकार के) प्रवचनों (=बुद्ध वचनों) द्वारा संस्तुत गुण निधि है, (और यह प्रज्ञा)

४. मोह रूप अँधियारे का निवारण (करने के लिए सभी प्रकार के) प्रदीपों में अग्र है, (ऐसा) ख्यात है ।

इस प्रकार मुमुक्षु पटुओं ने (प्रज्ञा की उपयोगिता को) समझकर, इस (प्रज्ञा) मार्ग का अनेकों उद्यमों से उत्पाद किया है ।

साधक मैंने भी एतादृश अनुष्ठान (=नियमित अभ्यास किया है । मुमुक्षु आप (लोग) भी एताविध परिशीलन (=सम्यक् अध्ययन) करें ।

## ཞི་ལྷག་ཟུང་འབྲེལ་གྱི་ལམ།

१. རྩེ་གཅིག་བསམ་གཏན་ཙམ་ལ་འཁོར་བ་ཡི། |
རྩ་བ་གཅོད་པའི་ནུས་པ་མ་མཐོང་ཞིང་། |
२. ཞི་གནས་ལམ་དང་བྲལ་བའི་ཤེས་རབ་ཀྱིས། |
ཇི་ཙམ་དཔྱད་ཀྱང་ཉོན་མོངས་མི་ལྡོག་པས། |
३. ཡིན་ལུགས་ཤུ་ཐག་ཆོད་པའི་ཤེས་རབ་དེ། |
གཡོ་མེད་ཞི་གནས་རྟ་ལ་བསྐྱོན་ནས་ནི། |
མཐའ་བྲལ་དབུ་མའི་རིགས་པའི་མཚོན་རྣོན་གྱིས། |
४. མཐར་འཛིན་དམིགས་གཏད་ཐམས་ཅད་འཇིག་བྱེད་པའི། |
ཚུལ་བཞིན་དཔྱོད་པའི་ཡངས་པའི་ཤེས་རབ་ཀྱིས། |
དེ་ཉིད་རྟོགས་པའི་བློ་གྲོས་རྒྱས་པར་མཛད། |

རྣལ་འབྱོར་ངས་ཀྱང་ཉམས་ལེན་དེ་ལྟར་བྱས། |
ཐར་འདོད་ཁྱེད་ཀྱང་དེ་བཞིན་བསྐྱང་འཚལ་ལོ། |

**शमथ-विपश्यना का संनद्ध मार्ग—**

१. मात्र एकाग्रता समाधि[१] में भवमूल (=तृष्णा) खण्डित करने की क्षमता दिखलाई नहीं देती । (क्योंकि केवल चित्तैकग्रता लौकिक

---

१. कुशल चित्त की एकाग्रता समाधि कहलाती है । समाधि दो प्रकार की होती है । यथा—लौकिक एवं लोकोत्तर समाधि । बौद्ध शास्त्रों के अनुसार यह ब्रह्माण्ड (=ཚངས་པའི་འཇིག་རྟེན་) ३१ भुवनों (=ཁམས་) या लोकों से अन्वित है तथा काम लोक (=འདོད་ཁམས), रूपलोक (=གཟུགས་ཁམས་) और अरूपलोक (=གཟུགས་མེད་ཀྱི་ཁམས་) आदि तीन लोकों में विभक्त है । मनुष्य दान, शील तथा समाधि आदि के पुण्यानुभाव (=བསོད་ནམས་ཀྱི་མཐུས་) से इन लोकों को प्राप्त करता है । परन्तु वह जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा नहीं पाता । क्योंकि लौकिक समाधि में भवमूल (=འཁོར་བའི་རྩ་བ་) 'तृष्णा' को उच्छिन्न करने की क्षमता नहीं होती । उपर्युक्त प्रथम दो पंक्तियों का यही भाव है ।

लोकोत्तर समाधि प्रज्ञा सुभावित आर्य मार्ग होता है । परन्तु शमथ (=ཞི་གནས་) के विना इसका प्रादुर्भाव नहीं होता । क्योंकि चित्तैकग्रता से ही प्रज्ञा का उदय होता है, विक्षिप्त चित्त क्लेशों से कवलित होता है । अत: प्रज्ञा के प्रादुर्भाव के लिए शमथ यानी चित्तैकग्रता नितान्त आवश्यक है । अन्यथा शमथ विहीन भावना से क्लेशों का सर्वथा निवारण नहीं हो सकता । उपर्युक्त तीसरी और चौथी पंक्तियों का यही आशय है ।

भगवान् कहते हैं—जो समाहित (=एकाग्र) चित्त है । वह यथाभूत का ज्ञान रखता है । जो यथाभूत दर्शी होता है, उसके हृदय में सत्त्वओं के प्रति महाकरुणा उदय होती है ।

योगेश्वर मि-ल-रस-पा लिखते हैं—

སྙོང་ཉིད་རྟོགས་ན་སྙིང་རྗེ་སྐྱེ། ।
སྙིང་རྗེ་སྐྱེས་ན་བདག་གཞན་མེད། ।
བདག་གཞན་མེད་ན་འགྲོ་དོན་འགྲུབ། ।
འགྲོ་དོན་འགྲུབ་ན་ང་དང་མཉམ། ।
མི་ལའི་མགུར་འབུམ་ལས། ।

ལྟ་བ་=दृष्टि:—आत्म-कल्याण के लिए किसी विशेष प्रकार की धारणा बना लेना दृष्टि कहलाती है । बौद्ध ग्रन्थों में पाँच प्रकार की दृष्टियों का वर्णन मिलता है । जिन्हें पाँच आकारवश दृष्टियाँ=འཇིག་ཚོགས་ལྟ་བ་ལྔ་ कहते हैं । ये हैं—

१. མི་འཇིག་ལྟ་བ= सत्काय दृष्टि ।
२. མཐར་འཛིན་ལྟ་བ= अन्तग्रह दृष्टि ।
३. ལོག་ལྟ་= मिथ्या दृष्टि ।
४. ལྟ་བ་མཆོག་འཛིན= दृष्टि परामर्श ।

समाधि होती है । इस प्रकार प्रज्ञा के द्वारा संपुष्ट हुए बिना समाधि मात्र से पुनर्भव का अन्त नहीं होता है । दूसरी ओर)

२. शमथ मार्ग विहीन (एकाकी) प्रज्ञा के द्वारा (चित्त की) चाहे जितनी भी मीमांसा कर ले, परन्तु क्लेशों का निवारण नहीं होता । (क्योंकि चित्तैकग्रता शमथ यद्यपि लौकिक समाधि होती है, परन्तु यह कुशल मूल होने के कारण प्रज्ञा के प्रादुर्भाव में हेतु होता है ।) अतः (उन कल्याण मित्रों ने)

---

५. བརྟུལ་ཞུགས་མཆོག་འཛིན་= शीलव्रत परामर्श ।

(क) १. मैं हूँ, मेरा है आदि काय के भीतर एक नित्य आत्मा की सत्ता की दृष्टि, सत्काय दृष्टि कहलाती है ।

२. किसी पदार्थ को नित्य, ध्रुव अपरिवर्तनशील मानना या सर्वथा नाश होने वाला मानना, ये शाश्वत (=རྟག་པ་) और उच्छेद (=ཆད་པ་) दो अन्तों या किनारों को जो पकड़े रहते हैं, उनकी वैसी दृष्टि अन्तग्राह दृष्टि कहलाती है ।

३. कुशलाकुशल कर्मों के फल को न मानना मिथ्या दृष्टि है ।

४. मेरा मत या सिद्धान्त ही सत्य है, दूसरों का असत्य है कि दृष्टि रखना दृष्टि परामर्श है ।

५. अहेतु को हेतु मानना । अमार्ग को मार्ग मानना, जैसे—ब्रह्मा (=ཚངས་པ་) आदि को सृष्टिकर्ता मानना । अग्नि में होम तथा पशुबलि आदि को धर्म मानना शीलव्रत परामर्श दृष्टि कहलाता है ।

(ख) १. आत्मा-आत्मीय दृष्टि सत्काय दृष्टि कहलाती है ।

२. ध्रुव या उच्छेदवाद इन दो अन्तों में विपरीत स्वीकृति होता है । अतः यह अन्तग्राह दृष्टि कहलाती है ।

३. इसे नास्तिक दृष्टि भी कहते हैं । क्योंकि यह अपवादिक दृष्टि है । जो दुःख आदि सत्य वस्तुसत का अपवाद करती है, अतः मिथ्या दृष्टि कहलाती है ।

४. जो दृष्टि अशुभ, नीच, हीन को शुभ और उच्च अवधारित करता है, वह दृष्टि परामर्श या कुदृष्टि कहलाती है ।

५. अहेतु में हेतु दृष्टि । अमार्ग में मार्ग दृष्टि शीलव्रत परामर्श है । अर्थात् महेश्वर (=དབང་ཕྱུག་ཚེན་པོ་), प्रजापति (=སྐྱེ་དགུའི་བདག་པོ) या किसी अन्य को, जो लोक हेतु नहीं है लोक हेतु मानना, अग्निप्रवेश या जलप्रवेश इन आत्महत्या के अनुष्ठानों का फल स्वर्गोपपत्ति मानना, शीलव्रत मात्रक को जो मोक्ष मार्ग नहीं है, मोक्ष मार्ग अवधारित करना तथा सांख्य और योगियों के लाभ को जो मार्ग नहीं है, मोक्ष मार्ग मानना शीलव्रत परामर्श कहलाती है ।

द्रष्टव्य—अभिधर्मकोश ५/७ आचार्य नरेन्द्रदेव का अनुवाद तथा व्याख्या ।

३. यथातथ्य निर्णेयिता उस प्रज्ञा को, अचल शमथ रूपी अश्व (=रथ) पर आरूढ़ कर (शाश्वत एवं उच्छेद दो) अन्तों रहित माध्यमिकों की युक्ति रूपी तीक्षणास्त्र से—

४. अन्तग्राह (के) सभी आलम्बनों को ध्वस्त कर देने वाली (तथा) विहित विवेकी बृहत् प्रज्ञा के द्वारा तथता बोधक मति की वृद्धि की है ।

साधक मैंने भी एतादृश अनुष्ठान (=नियमित अभ्यास) किया है । मुमुक्षु आप (लोग) भी एताविध परिशीलन (सम्यक्अध्ययन) करें ।

ཞི་ལྷག་ཟུང་འབྲེལ་གྱི་རྨད་བྱུང་ལམ།།

१. རྩེ་གཅིག་གོམས་པས་ཏིང་འཛིན་འགྲུབ་པ་ནི། ।
སྨོས་པར་ཅི་འཚལ་, २. རྒྱལ་བཞིན་དཔྱོད་པ་ཡི། ।
སོ་སོར་རྟོག་པ་ཡིས་ཀྱང་ཡིན་ལུགས་ལ། ।
३. གཡོ་མེད་ཤིན་ཏུ་བརྟན་པར་གནས་པ་ཡི། ।
ཏིང་འཛིན་བསྐྱེད་པར་ ४. མཐོང་ནས་ཞི་ལྷག་གཉིས། ।
ཟུང་འབྲེལ་བསྒྲུབ་ལ་བརྩོན་རྣམས་ཡ་མཚན་ནོ། ।

རྣལ་འབྱོར་ངས་ཀྱང་ཉམས་ལེན་དེ་ལྟར་བྱས། ।
ཐར་འདོད་ཁྱེད་ཀྱང་དེ་བཞིན་བསྐྱང་འཚལ་ལོ། ।

**शमथ-विपश्यना सन्नद्ध अद्भुत मार्ग—**

१. (चित्त की) एकाग्रता (के) अभ्यास से समाधि सम्पन्न होना तो क्या कहना ?

२. विधिवत् प्रत्यवेक्षा[1] के द्वारा भी मीमांसा कर लेने पर यथातथ्य (=शून्यता) में (चित्त)

३. अचल (एवं) अति सुदृढ़ रहने की समाधि उत्पन्न होती है । (यह)

४. देखकर शमथ-विपश्यना[2] दोनों के समन्वय (=एकत्व) स्थापित करने के प्रयास में लगे (लोग) अद्भुत हैं ।

साधक मैंने भी एतादृश अनुष्ठान (=नियमित अभ्यास) किया है । मुमुक्षु आप (लोग) भी एतादृश परिशीलन (=सम्यक् अध्ययन) करें ।

## ཐབས་ཤེས་ཟུང་འཇུག་གི་ལམ།

१. མཉམ་གཞག་ནམ་མཁའ་ལྟ་བུའི་སྟོང་ཉིད་དང་། ।

---

१. हर एक बात के पूर्वापर का विचार करना प्रत्यवेक्षा (=སོ་སོར་རྟོགས་པ་) कहलाती है । कतिपय विचारकों का संशय है कि शमथ- (=ཞི་གནས་) लाभी साधक को विपश्यना (=ལྷག་མཐོང་) की अवस्था में प्रत्यवेक्षा कम करनी चाहिए अन्यथा उनका पूर्व प्रतिष्ठित शमथ तो क्षय होगा ही, वह नया भी उत्पन्न नहीं कर पायेगा । इस प्रकार शमथ (=एकाग्रता) के अभाव में साधक (=སྒྲུབ་པ་པོ་) विपश्यना से भी हाथ धो बैठेगा । परन्तु ऐसी शंका युक्तियुक्त नहीं है । क्योंकि साधक शमथ पर अवस्थित रहते हुए विपश्यना की भावनाक्रम में प्रत्यवेक्षा करता है । यह भावना विधि का एक उपक्रम है । इस संदर्भ में अधिक जानने की इच्छुक व्यक्ति को स्रोत लेखक का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "बृहत् बोधि पथक्रम"=ལམ་རིམ་ཆེན་མོ་ के इसी प्रकरण का अध्ययन करना चाहिए ।

योगी रङ्ग-रिग-रस-पा एक प्रणिधान में कहते हैं:—

ཡིད་ཞི་གནས་ཀྱི་ཉམས་ལ་མ་ཞེན་པར། ।

ལྷག་མཐོང་གི་རང་བཞིན་ཤེས་པར་ཤོག ।

२. शमथ लौकिक समाधि है और विपश्यना लोकोत्तर । शमथ के प्रभाव से चित्त समाहित होता है । समाहित चित्त होने से विपश्यना का प्रादुर्भाव होता है । विपश्यना एक विशिष्ट ज्ञान है, जिसके द्वारा धर्मों की अनित्यता, दुःखता और अनात्मता का ज्ञान होता है । निर्वाण के प्रार्थी को शमथ की भावना के साथ-साथ विपश्यना की वृद्धि भी करनी चाहिए, क्योंकि इसके बिना अर्हत्व पद प्राप्त नहीं होता । इस प्रकार एक आलम्बन में दोनों भावनाओं के समन्वय करने का प्रयास समाधि का चरम आदर्श होता है ।

२. རྗེས་ཐོབ་སྒྱུ་མ་ལྟ་བུའི་སྟོང་པ་གཉིས། |
३. བསྒོམས་ནས་ཐབས་ཤེས་ཟུང་དུ་འབྲེལ་བ་ཡིས། |
४. རྒྱལ་སྲས་སྤྱོད་པའི་ཕ་རོལ་འགྲོ་བ་བསྔགས། |
དེ་ལྟར་རྟོགས་ནས་ཕྱོགས་རེའི་ལམ་གྱིས་ནི། |
ཆོག་པ་མེད་པ་སྐལ་བཟང་རྣམས་ཀྱི་ལུགས། |
རྣལ་འབྱོར་ངས་ཀྱང་ཉམས་ལེན་དེ་ལྟར་བྱས། |
ཐར་འདོད་ཁྱེད་ཀྱང་དེ་བཞིན་བསྐྱང་འཚལ་ལོ། |

**प्रज्ञोपाय समन्वित मार्ग—**

१. समाहित[१] (अवस्था के) आकाश सदृश की शून्यता और
२. पृष्ठलब्ध (की) माया स्वरूप शून्यता, (इन) दोनों (प्रकार की शून्यताओं का)
३. अभ्यास कर (तथा) प्रज्ञोपाय (के) समन्वय से
४. जिनसुतों (की) चर्या अर्थात् बोधिचर्या में पारंगत होना श्लाघ्य है ।

ऐसा अवगाहन कर एक पक्षीय मार्ग से अतृप्त होना सौभाग्यशालियों (=साधकों) की नियति होती है ।

---

१. समाहित अवस्था का शून्यता ज्ञान और पृष्ठलब्धावस्था का शून्यता-ज्ञान, ये दोनों ज्ञान वस्तुतः एक ही ज्ञान है । अतः इन ज्ञानों का क्रमशः नहीं अपितु युगपत (=ཅིག་ཅར་) प्रवृत्त होने का अभ्यास करना जिन पुत्रों की परम चर्या होती है । सामान्यता समाहित ज्ञान के अनन्तर ही पृष्ठलब्ध ज्ञान उत्पन्न होता है, और इसके द्वारा केवल सांवृतिक धर्म का अवबोध होता है । इससे शून्यता का साक्षात्कार नहीं किया जा सकता । अतएव पृष्ठलब्ध ज्ञान समाहित ज्ञान अभिभूत होना चाहिए । इस प्रकार दोनों ज्ञान का एक ही होना बुद्धज्ञान की विशेषता रखती है । परमार्थसत्य ज्ञान और संवृत्तिसत्य ज्ञानों का एक साथ साक्षात जानने वाला ज्ञान, सर्वज्ञ ज्ञान होता है । इसी को महाबोधि (=བྱང་ཆུབ་ཆེན་པོ་) कहते हैं ।

आचार्य चोङ-ख-पा महान इसी प्रसंग में कहते हैं—

ད་ལྟ་ལེགས་པར་གོམས་པས་རྗེས་ཐོབ་ཏུའང་སྣ་ཚོགས་པའི་སྣང་བ་འདི་ཐམས་ཅད་སྟོང་བཞིན་དུ་སྣང་བའི་སྒྱུ་མ་ལྟར་འཆར་གྱི། སྟོང་པ་ཉིད་ཀྱི་རྒྱུས་མ་ཐེབས་པ་སྣང་བ་རང་དགའ་བ་ཆེར་མི་འཆར་བར་འདུག་ཅེས་གསུངས་སོ།། རྣམ་ཐར་ཤོག་ལྷེ་ 84.

साधक मैंने भी एतादृश अनुष्ठान (=नियमित अभ्यास) किया है । मुमुक्षु आप (लोग) भी एताविध परिशीलन (=सम्यक् अध्ययन) करें ।

རྒྱུ་འབྲས་ཀྱི་ཐེག་པ།

१. དེ་ལྟར་རྒྱུ་དང་འབྲས་བུའི་ཐེག་ཆེན་གྱི། |
ལམ་མཆོག་གཉིས་ཀར་དགོས་པའི་ཐུན་མོང་ལམ། |
२. ཇི་བཞིན་བསྐྱེད་ནས་མཁས་པའི་དེད་དཔོན་གྱི། |
३. མགོན་ལ་བརྟེན་ནས་རྒྱུད་སྡེ་རྒྱ་མཚོ་ཆེར། |
ཞུགས་ནས་ཡོངས་རྫོགས་མན་ངག་བསྟེན་པ་དེས། |
४. དལ་འབྱོར་ཐོབ་པ་དོན་དང་ལྡན་པར་བྱས། |
རྣལ་འབྱོར་ངས་ཀྱང་ཉམས་ལེན་དེ་ལྟར་བྱས། |
ཐར་འདོད་ཁྱེད་ཀྱང་དེ་བཞིན་བསྐྱང་འཚལ་ལོ། |

**हेतु-फलयान—**

१. इस प्रकार हेतु[1] (-गत पारमितायान) और फल (-गत गुह्य वज्रयान) दोनों महायान के उत्तम मार्ग (=बौद्ध प्रस्थान) के लिए अपेक्षित सामान्य मार्ग हैं । (इन मार्गों को जिन्होंने)

---

१. महायान बौद्ध धर्म सर्वभूत दया पर आश्रित है । इसका उद्देश्य बुद्धत्व की प्राप्ति और अनन्त सत्त्वओं का कल्याण है । साधक अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक कल्पों तक पारमिताओं को पूर्ण करता है तथा सर्वज्ञत्व की प्राप्ति के निमित यत्नवान् रहता है । इसके दो पहलू होते हैं—यथा, पारमितायान और गुह्यवज्रयान । ये दोनों यान बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए महायान के दो अपेक्षित सामान्य मार्ग (=प्रस्थान) हैं । यद्यपि पारमितायान से गुह्यवज्रयान कई अर्थों में विशिष्ट है, तथापि समान रूप से दोनों यानों का उद्देश्य (=फल) बुद्धत्व लाभ है और दोनों के बुद्धत्व में भी उच्चावच की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं होता । परन्तु दोनों यानों के बुद्धत्व रूपी फल को प्राप्त करने के अपने अलग-अलग उपाय होते हैं । इसी से दोनों को पृथक यान के रूप में व्यवस्था की गई है । तो भी दोनों का फल यानी बुद्धत्व दो विभिन्न प्रकार का नहीं अपितु एक है । यानी दो प्रस्थान और एक लक्ष्य (=फल) है । अतएव पारमितायान न तो गुह्यवज्रयान का हेतु होता है और न ही गुह्यवज्रयान, पारमितायान का फल अथवा परिणाम ।

२. यथावत् उत्पाद कर (तथा) दक्ष नायकों (=गुरुजनों) के
३. आश्रय से सूत्र-तंत्र रूपी महासागर में प्रवेश कर संपूर्ण उपदेशों (=बुद्ध वचनों) का सेवन किया है, उन्होंने
४. क्षण-सम्पत्ति (=मनुष्यभाव) की उपलब्धि (को) सार्थक किया है, अर्थात् बनाया है ।

साधक मैंने भी एतादृश अनुष्ठान (=नियमित अभ्यास) किया है । मुमुक्षु आप (लोग) भी एताविध परिशीलन (=सम्यक् अध्ययन) करें ।

## དགོས་དོན་དང་བསྔོ་སྨོན།

१. རང་གི་ཡིད་ལ་གོམས་པར་བྱ་ཕྱིར་དང་། ।
२. སྐལ་བཟང་གཞན་ལའང་ཕན་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར། ।
३. རྒྱལ་བ་དགྱེས་པའི་ཡོངས་སུ་རྫོགས་པའི་ལམ། ।
གོ་སླའི་ངག་གིས་བཤད་པའི་དགེ་བ་དེས། ।

---

आर्य ग्रन्थों के अनुसार बुद्ध काय (=སངས་རྒྱས་ཀྱི་སྐུ་) दो प्रकार का होता है—यथा, धर्मकाय (=ཆོས་སྐུ་) और रूपीकाय (=གཟུགས་སྐུ་) । इस प्रकार सूत्र (=पारमिता) और तंत्र दोनों इस विषय में सहमत हैं कि जिस प्रकार बुद्धकाय दो प्रकार का होता है, उसी प्रकार उनके असाधारण-हेतु (=ཐུན་མོང་མ་ཡིན་པའི་རྒྱུ་) भी द्विविध होना चाहिए । बोधिचित्त द्वारा परिगृहीत प्रज्ञा धर्म- काय का असाधारण हेतु और रूपीकाय का सहकारी प्रत्यय (=ལྷན་ཅིག་བྱེད་རྐྱེན་) है । जबकि गुह्यवज्रयान में रूपीकाय का असाधारण हेतु गम्भीर उपाय (=རྒྱ་ཆེ་བའི་ཐབས་) माना गया है । केवल इसी आधार पर इन दोनों यानों में भेद माना गया है । इस प्रकार हेतु (=पारमितायान) और फल (=गुह्यवज्रयान) के बुद्धत्व लाभ करने के हेतु (=उपाय) में मौलिक भेद है । चूँकि पारमितायान में रूपीकाय का असाधारण हेतु गम्भीर उपाय न होकर बोधिचित्त एवं षट्-पारमिता मात्र है । उपाय की इस असमानता की वजह से इस यान के द्वारा लक्ष्य (=बुद्धत्व) की प्राप्ति में अनेकों जन्म लग जाते हैं । जब कि गुह्यवज्रयान के द्वारा तीक्ष्णेन्द्रिय पुद्गल इसी जन्म में या कुछ वर्षों में ही बुद्धत्व लाभ कर सकता है । विद्वान् इन प्रस्थानों के सम्यक् अनुष्ठान तथा दक्ष गुरुओं के आश्रय से अपना जीवन सार्थक बना लेते हैं ।

४. འགྲོ་བ་ཀུན་ཀྱང་རྣམ་དག་ལམ་བཟང་དང་། ।
འབྲལ་མེད་གྱུར་ཅིག་ཅེས་ནི་སྨོན་ལམ་འདེབས། ।
རྣལ་འབྱོར་ངས་ཀྱང་སྨོན་ལམ་དེ་ལྟར་བཏབ། ।
ཐར་འདོད་ཁྱེད་ཀྱང་དེ་བཞིན་བསྐྱང་འཚལ་ལོ། ।

**प्रयोजन एवं परिणामना—**

१. अपने मन को भासित करने के लिए तथा
२. अन्य सौभाग्यशालियों के उपकार के लिए भी,
३. जिनों (=बुद्धों) का रुचिकर सम्पूर्ण (महायान) मार्ग, सरल वचनों में अभिव्यक्त करने के पुण्यभाव से
४. सर्वसत्त्व विशुद्ध (एवं) सन्मार्ग (=बुद्धमार्ग) से वंचित न हों (ऐसा मैं) प्रणिधान (=प्रार्थना) करता हूँ ।

साधक मैंने भी एतादृश प्रणिधान (=प्रार्थना) किया है ।
मुमुक्षु आप (लोग) भी एताविध (याचना) करें ।

མཇུག་གི་དོན།

ཞེས་བྱང་ཆུབ་ལམ་གྱི་རིམ་པའི་ཉམས་ལེན་གྱི་རྣམ་གཞག་མདོར་བསྡུས་ཏེ་བརྗེད་བྱང་དུ་བྱས་པ་འདི་ནི་མང་དུ་ཐོས་པའི་དགེ་སློང་སྤོང་བ་པ་བློ་བཟང་གྲགས་པའི་དཔལ་གྱིས་ འབྲོག་རི་བོ་ཆེ་དགེ་ལྡན་རྣམ་པར་རྒྱལ་བའི་གླིང་དུ་སྦྱར་བའོ།།

**समापन—**

इस प्रकार बोधिपथ क्रम के अनुष्ठान का व्यवस्थान (=प्रबंध) संक्षेपतः संस्मरण (के रूप) में रचित, यह (लघु काय ग्रन्थ) बहुश्रुत भिक्षु परिव्राजक सुमतिकीर्तिश्री ने, डोग-री-वो-छे (=अरण्य गिरीश) दगे-ल्दन (=गे-दन) यानी ग-दन विजय द्वीप (नामक विहार) में प्रणीत किया ।

---

आचार्य चोङ्-ख-पा के विशाल रचनाओं में, टशी-ल्हुन-पो संस्करण के जिल्द 'ख' पृष्ठ ६५ से ६८ तक से उद्धृत ।

•

परिशिष्ट–१

## ग्रन्थकार की सांक्षेपिक जीवनी

༄༅།། མཉམ་མེད་རྗེ་བཙུན་བླ་མ་ཙོང་ཁ་པ་ཆེན་པོ་བློ་བཟང་གྲགས་པ།

१. རབ་བྱུང་དྲུག་པའི་མེ་བྱ་ལོར་(१३५७)མདོ་སྨད་ཤར་ཙོང་ཁར་སྐུ་འཁྲུངས།

२. རབ་བྱུང་དྲུག་པའི་ས་ཕག་ལོར (१३५९) ཀརྨ་རོལ་པའི་རྡོ་རྗེའི་དྲུང་ནས་དགེ་བསྙེན་གྱི་སྡོམ་པ་བཞེས། མཚན་ཀུན་དགའ་སྙིང་པོ་བཏགས།

३. རབ་བྱུང་དྲུག་པའི་ཆུ་སྟག་ལོར་ (१३६२) ཆོས་རྗེ་དོན་གྲུབ་རིན་ཆེན་གྱིས་རྗེ་ཙོང་ཁ་པ་ལ་དབང་བསྐུར་ཏེ་གསང་མཚན་དོན་ཡོད་རྡོ་རྗེ་གསོལ།

४. རབ་བྱུང་དྲུག་པའི་ཆུ་ཡོས་ལོར་ (१३६३) དགེ་ཚུལ་བསྒྲུབས། བློ་བཟང་གྲགས་པ་མཚན་གསོལ།

५. རབ་བྱུང་དྲུག་པའི་ཆུ་བྱི་ལོར་ (१३७२) རྗེ་རིན་པོ་ཆེ་དབུས་སུ་འབྱོན་པར་བརྩམས།

६. རབ་བྱུང་དྲུག་པའི་ཆུ་གླང་ལོར་ (१३७३) མདོ་སྨད་ནས་བཏེགས། སྟོན་འབྲི་གུང་དུ་ཕེབས།དགུན་ཆོས་ལ་སྙེ་ཐང་བདེ་བ་ཅན་དུ་ཕར་ཕྱིན་གསན།

७. རབ་བྱུང་དྲུག་པའི་ཤིང་ཡོས་ལོར་(१३७५) རྗེ་རིན་པོ་ཆེས་གྲྭ་སྐོར་མཛད།

८. རབ་བྱུང་དྲུག་པའི་མེ་འབྲུག་ལོར་ (१३७६) རྗེ་རིན་པོ་ཆེས་ཆོས་འཁོར་ཐོག་མ་བསྐོར།

९. རབ་བྱུང་དྲུག་པའི་ས་རྟ་ལོར་ (१३७८) རྗེ་ཙོང་ཁ་པས་རྗེ་བཙུན་རེད་མདའ་བ་ལས་མངོན་པ་དང་རྣམ་འགྲེལ་གསན།

१०. རབ་བྱུང་བདུན་པའི་མེ་ཡོས་ལོར་(१३८७) རྗེ་ཙོང་ཁ་པས་སྤྱན་སྔ་གྲགས་པ་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་རྣམ་པར་ཐར་པ་བརྩམས།

११. རབ་བྱུང་བདུན་པའི་ས་འབྲུག་ལོར་ (१३८८) རྗེ་རིན་པོ་ཆེས་ལེགས་བཤད་གསེར་ཕྲེང་བརྩམས།

१२. རབ་བྱུང་བདུན་པའི་ལྕགས་རྟ་ལོར་(१३९०) རྗེ་ཙོང་ཁ་པས་བླ་མ་དབུ་མ་པ་བསྟེན།

१३. རབ་བྱུང་བདུན་པའི་ཆུ་སྤྲེལ་ལོར་ (१३९२) རྗེ་རིན་པོ་ཆེས་འཇམ་དབྱངས་ཞལ་གཟིགས།

१४. རབ་བྱུང་བདུན་པའི་ཤིང་ཕག་ལོར་ (१३९५) རྗེ་ཙོང་ཁ་པས་ལྷོ་བྲག་གྲུབ་ཆེན་ནམ་མཁའ་རྒྱལ་མཚན་བསྟེན།

१५. རབ་བྱུང་བདུན་པའི་མེ་བྱི་ལོར་ (१३९६) རྒྱལ་ཚབ་དར་མ་རིན་ཆེན་གྱིས་རྗེ་ཙོང་ཁ་པ་བསྟེན།

१६. རབ་བྱུང་བདུན་པའི་ཆུ་རྟ་ལོར་ (१४०२) རྗེ་རིན་པོ་ཆེས་རྭ་སྒྲེང་དུ་བྱང་ཆུབ་ལམ་རིམ་ཆེན་མོ་བརྩམས།

१७. རབ་བྱུང་བདུན་པའི་ཆུ་ལུག་ལོར་ (१४०३) རྗེ་རིན་པོ་ཆེས་བྱང་སའི་ཚུལ་ཁྲིམས་ལེའུ་དང་། བླ་མ་ལྔ་བཅུ་པ་དང་རྩ་ལྟུང་བཅུ་བཞི་བཅས་ཀྱི་རྣམ་བཤད་བརྩམས།

१८. རབ་བྱུང་བདུན་པའི་ཤིང་བྱ་ལོར་ (१४०५) རྗེ་ཙོང་ཁ་པས་སྔགས་རིམ་ཆེན་མོ་བརྩམས།

१९. རབ་བྱུང་བདུན་པའི་མེ་ཕག་ལོར་ (१४०७) རྗེ་ཙོང་ཁ་པས་དྲང་ངེས་ལེགས་བཤད་སྙིང་པོ་དང་རྩ་ཤེའི་ཊཱིཀ་ཆེན་བརྩམས།

२०. རབ་བྱུང་བདུན་པའི་ས་གླང་ལོར་ (१४०९) རྗེ་ཙོང་ཁ་པས་ལྷ་སར་སྨོན་ལམ་ཆེན་མོ་བཙུགས། འབྲོག་རི་བོ་དགའ་ལྡན་དགོན་པ་བཏབ།

२१. རབ་བྱུང་བདུན་པའི་ལྕགས་ཡོས་ལོར་ (१४११) རྗེ་ཙོང་ཁ་པས་རིམ་ལྔ་གསལ་སྒྲོན་བརྩམས།

२२. རབ་བྱུང་བདུན་པའི་ཤིང་ལུག་ལོར་ (१४१५) རྗེ་ཙོང་ཁ་པས་དགའ་ལྡན་ཡངས་པ་ཅན་བཏབ། ལམ་རིམ་འབྲིང་པོ་བརྩམས།

२३. རབ་བྱུང་བདུན་པའི་མེ་བྱ་ལོར་ (१४१७) རྗེ་རིན་པོ་ཆེས་ཡངས་པ་ཅན་གྱི་རྟེན་རྣམས་བཞེངས།

२४. རབ་བྱུང་བདུན་པའི་ས་ཕག་ལོར་ (१४१९) རྗེ་རིན་པོ་ཆེ་ཞི་བར་གཤེགས།།

---

नोट—भोट देशीय संवत्सर-चक्र तथा संवत् आदि की अधिकांश सूचनाएँ 'भोट-चीनी महा शब्दकोश' द्वितीय संस्करण, १९८४ के आधार पर दी गई हैं ।

●

परिशिष्ट–२,

## संदर्भ-सूची


१. མཁས་གྲུབ་དགེ་ལེགས་དཔལ་བཟང་། རྗེ་བཙུན་བླ་མ་ཙོང་ཁ་པ་ཆེན་པོའི་ངོ་མཚར་རྨད་དུ་བྱུང་བའི་རྣམ་པར་ཐར་པ་དད་པའི་འཇུག་ངོགས།།

२. མཁས་གྲུབ་རྗེ། རྗེ་རིན་པོ་ཆེའི་གསང་བའི་རྣམ་ཐར་རིན་པོ་ཆེའི་སྙེ་མ།།

३. རྒྱལ་བ་སྐུ་ཕྲེང་བརྒྱད་པ་འཇམ་དཔལ་རྒྱ་མཚོ། རྗེ་ཙོང་ཁ་པའི་ཟུར་འདེབས་རྣམ་ཐར་ལེགས་བཤད་ཀུན་འདུས།།

४. ཤཱཀྱའི་དགེ་སློང་བཀྲ་ཤིས་དཔལ། རྗེ་བཙུན་བླ་མ་བློ་བཟང་གྲགས་པའི་གསང་བའི་རྣམ་ཐར་གསོལ་འདེབས།།

५. གུ་གྲི་བློ་བཟང་ཚེ་འཕེལ། ཆེན་པོ་ཧོར་གྱི་ཡུལ་དུ་དམ་པའི་ཆོས་ཇི་ལྟར་བྱུང་བའི་ཚུལ་བཤད་པ་རྒྱལ་བའི་བསྟན་པ་རིན་པོ་ཆེ་གསལ་བར་བྱེད་པའི་སྒྲོན་མེ།།

६. ཐོའུ་ཀྭན་བློ་བཟང་ཉི་མ། གྲུབ་མཐའ་ཤེལ་གྱི་མེ་ལོང་།།

७. རྗེ་བཙུན་བློ་བཟང་གྲགས་པ། བྱང་ཆུབ་ལམ་རིམ་ཆེན་མོ།།

८. རྒྱལ་བ་སྐུ་ཕྲེང་བཅུ་བཞི་པ་ཆེན་པོ། ལེགས་བཤད་བློ་གསར་མིག་འབྱེད།།

९. དགེ་བཤེས་ངག་དབང་ཉི་མ། ཆོས་འབྱུང་ལུང་རིགས་སྒྲོན་མེ།།

१०. རི་ཁ་བློ་བཟང་བསྟན་འཛིན། རྒྱུན་མཁོའི་ཆོས་སྲིད་ཤེས་བྱ་གནས་ཚུལ།།

११. བོད་རྒྱ་ཚིག་མཛོད་ཆེན་མོ། དཔར་ཐེངས་གཉིས་པ། མི་རིགས་དཔེ་སྐྲུན་ཁང་། པེ་ཅིན། 1984

१२. नेगी लामा शासनधर ध्वज = अनु० बोधिपथक्रम पिण्डार्थ, भोट धार्मिक कार्यालय द्वारा मुद्रित, धर्मशाला–१९५९

१३. प्रो० सेम्पा दोर्जे = अनु० बोधिपथक्रम पिण्डार्थ, हिमाचल प्रदेश–१९८६

१४. राहुल सांकृत्यायन = तिब्बत में बौद्ध धर्म, किताब महल, इलाहाबाद–१९४८

१५. थुपतन छोगडुब = अनु० बौद्ध सिद्धान्त सार, वाराणसी–१९६४

Library IIAS, Shimla
H 294.7 T 789 B
00095028